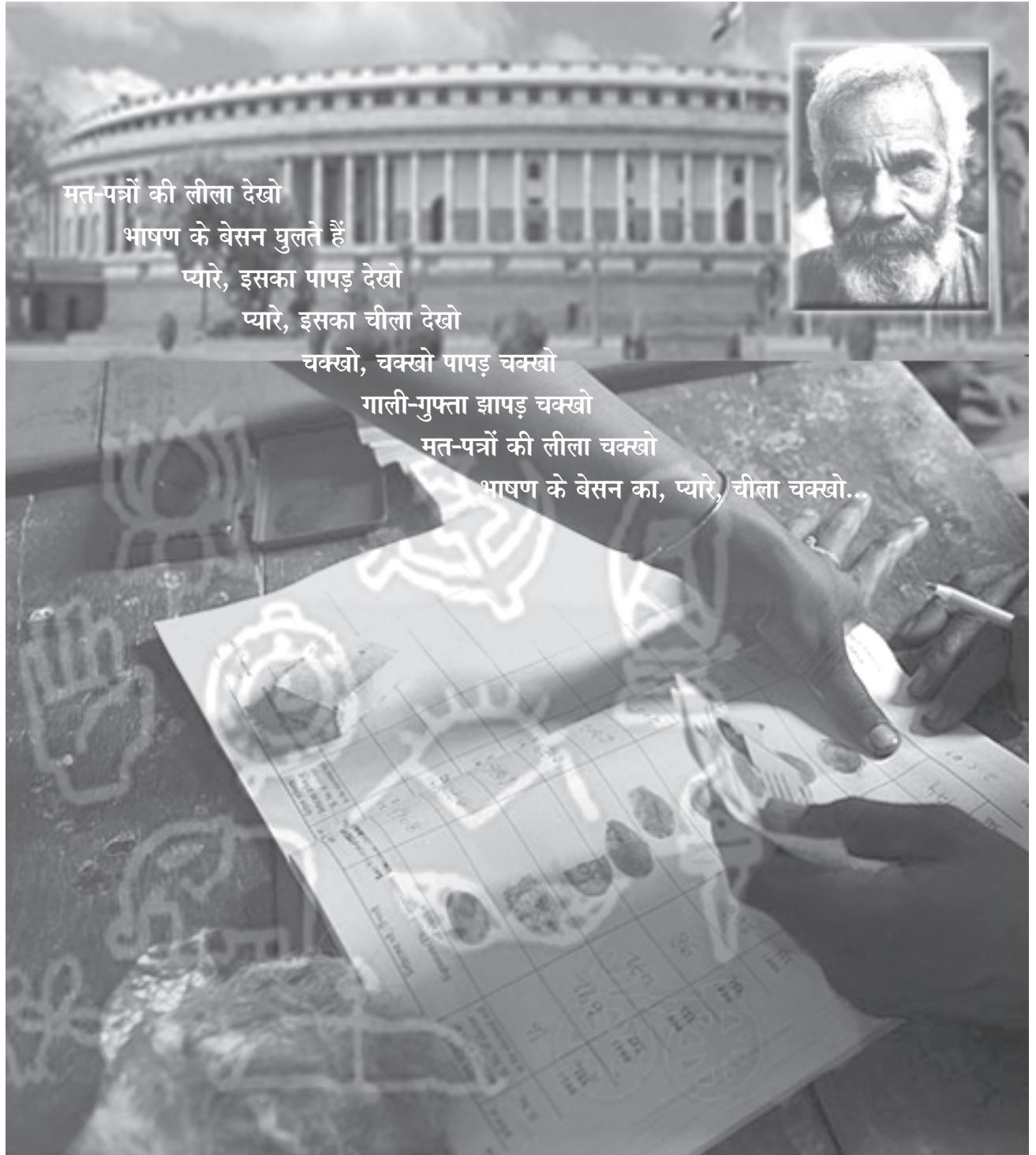


समरथ



मार्च-अप्रैल 2009 ♦ नई दिल्ली



मत-पत्रों की लीला देखो

भाषण के बेसन घुलते हैं

प्यारे, इसका पापड़ देखो

प्यारे, इसका चीला देखो

चक्खो, चक्खो पापड़ चक्खो

गाली-गुफ्ता झापड़ चक्खो

मत-पत्रों की लीला चक्खो

भाषण के बेसन का, प्यारे, चीला चक्खो...

नाहि तो जनम नयाई

आम चुनावों का मौसम आया और गया। लगभग दो दशक पहले तक भारत के आम चुनाव एक महापर्व की तरह होते थे और तमाम दल अपनी-अपनी नीति और राजनीति के साथ मुद्दे लेकर चुनाव में उतरते थे। समय बदला तो चुनावी चाल-ढाल में भी परिवर्तन आया। अब चुनाव एक पर्व की तरह नहीं रह गए। पर्व बनते हैं आमजन के एकजुट होने पर और पूरे जोर-शोर से उसमें हिस्सा लेने पर। लेकिन अब आमजन इसे पर्व नहीं मानते और न ही इसमें दिलचस्पी या उत्साह दिखाते हैं। और ऐसा क्यों न हो, उन्हें अच्छी तरह मालूम है कि उनके पास राजनीतिक दल आएंगे अपना पूरा बल लेकर। यह बल राजनीति और मुद्दों का बल नहीं बाहुबल और धनबल होगा। जिसके पास जितना बाहुबल और धनबल उसकी उतनी सीटें। देश के बड़े-बड़े उद्योगपति जो कि देश के असल शासक हैं अच्छी तरह से नाप-तौलकर कि किस दल के सत्ता में रहने से वे जनता का गला आसानी से काट सकते हैं, ये उद्योगपति उसे अधिक-से-अधिक धनबल, बाहुबल और न जाने किन-किन तरह के बल प्रदान करते हैं और सत्ता नशीन करवाते हैं। आम जनता अच्छी तरह से समझ चुकी है कि जो आएगा जनता का गला दबाएगा। देश की इतनी बड़ी आबादी का 38 प्रतिशत वोट लेकर एक अरब बीस करोड़ जनता के सर पर तांडव करने के लिए सरकारें बन जाती हैं। वैसे जो दल हारते हैं उन्हें इतने ही प्रतिशत वोट मिल जाते तो क्या स्थिति बदल जाती? शायद देश का हर गरीब नागरिक इसका जवाब नकारात्मक ही देगा। क्योंकि नीतियां वही रहती हैं सत्ता में कोई भी दल हो। यही कारण है कि पिछला चुनाव मुद्दा विहीन था। यदि पिछली सरकार के सत्ताधारी पक्ष ने अपनी उलब्धियां गिनाई तो प्राकृतिक रूप से विपक्ष ने उसका खंडन किया। सत्ता पक्ष ने वंचित समुदायों का जीवन बेहतर बनाने के लिए न वायदे किए न दावे। विपक्ष ने भी वैसा ही किया। लेकिन इस चुनाव में कुछ और शक्तियां थी। इनमें से कुछ शक्तियों से आम जनता हमेशा से उम्मीदें बावस्ता करती रही लेकिन इस चुनाव में उन्होंने भी कोई वायदा नहीं किया। उनका मानना था कि इनको भी हराओ और उनको भी हराओ क्योंकि दोनों बुरे हैं। उन्होंने यह नहीं कहा कि हमें इसलिए जिताओ कि हम अच्छे हैं या फिर हम जनता का जीवन बदल देंगे। मुद्दा विहीन मात्र विरोधी प्रवृत्ति की राजनीति इस देश का भविष्य लिख रही है। लेकिन राजनेता हथकंडे जो अपनाते हैं वे पहले भी वही थे और आज भी। आइये देखते हैं इसकी एक झलक नागार्जुन की इस कविता में।

इतना भी क्या कम है प्यारे

लाशों को झकझोर रहे हैं
मुर्दों की मालिश करते हैं
...ये भी उन्हें वोट डालेंगी!
मतपत्रों की आँख-मिचौली
सबको ही अच्छी लगती है
फिर भी सच है
किस्मत उनकी ही जगती है
जैसे-तैसे जीतेंगे जो

जैसे-तैसे ज्यादा-ज्यादा मतपत्रों को
खींचेंगे जो, जीतेंगे वो
हाँ, हाँ, वो ही जीतेंगे
जी हाँ, वो ही जीतेंगे!
लाशें भी खुश-खुश दीखेंगी
मुर्दे भी खुश खुश दीखेंगे
उनकी ही सरकार बनेगी

श्रमिक जनों का खेतिहरों का
छात्र वर्ग का, लिपिक वर्ग का
गिरिजन का भी, हरिजन का भी
आम जनों का
लहू चूसने की तरकीबें
नई-नई ईजाद करेगी
निर्मम होकर कतल करेगी
जो भी चूँ बोलेगा, उसका

जो भी अब सरकार बनेगी
सेठों को ही सुख पहुँचाएगी
पाँच साल फिर मौज करेंगे
लोकसभाई-लोकसभाई-लोकसभाई
सांसद-फांसद, M.L.A. गण, M.L.C. गण
पाँच साल फिर मौज करेंगे
यूँ ही बस भत्ता मारेंगे
नौकरशाही की छाया में
सुविधाभोगी बौद्धिक जनों की
उसको ही आशीष मिलेगी
धर्म-धुरंधर पंडित-मुल्ला
तिकड़मजीवी ग्रंथकीट विद्या-व्यवसाई
कवि-साहित्यिक, पत्रकार, तकनीक-विशारद
सबकी ही आशीष मिलेगी
नवसत्ता, अभिनव सत्ता को
सबकी ही आशीष बटोरेगी
फिर से सरकार...
मुझ-जैसे पागल दस-पाँच
उस सत्ता को पहुँचाएँगे क्या रस्ती-भर भी आँच?
मुझ-जैसे पागल दस-पाँच
कैसी भी सरकार बने तो
उसका हम क्या कर लेंगे?
क्या कर लेंगे, हाँ जी, उसका!
कुत्तों जैसे भौंक-भौंककर-

उसकी नींद हराम करेंगे?
हाँ जी, हाँ जी, हाँ जी, हाँ जी
इतना तो कर ही सकते हैं...
इतना तो कर ही सकते हैं...
यह भी तो काफी है प्यारे
इतना भी क्या कम है प्यारे?

मत-पत्रों की लीला देखो
भाषण के बेसन घुलते हैं
प्यारे, इसका पापड़ देखो
प्यारे, इसका चीला देखो
चक्खो, चक्खो पापड़ चक्खो
गाली-गुफ्ता झापड़ चक्खो
मत-पत्रों की लीला चक्खो
भाषण के बेसन का, प्यारे, चीला चक्खो...

लाशों को झकझोर रहे हैं
मुर्दों की मालिश करते हैं
निर्वाचन के जादूगर हैं
राजनीति के मायाधर हैं
इनकी जय-जयकार मनाओ
इनकी ही सरकार बनाओ
पीछे देखा जाएगा जी
आएगा जो, आएगा जी
भुगतें वैसी, करनी इनकी होगी जैसी
नहीं, नहीं, सो क्योंकर होगा?
नहीं, नहीं, सो क्योंकर होगा?
नहीं, नहीं, सो क्योंकर होगा?
फिर क्या होगा!
फिर क्या होगा!
फिर क्या होगा!

साभार : नागार्जुन रचनावली

भाग 2

हिंसा की राजनीति के पैरोकार

■ अपूर्वानंद

2009 के लोकसभा चुनाव की अगर इसके पहले दो चरणों के आधार पर कोई खासियत बतानी हो तो कहना पड़ेगा कि समाज के पारंपरिक शक्ति संतुलन में विचलन के भय से तथाकथित ऊंची जातियों के द्वारा पहले जो हिंसा होती थी, वह नहीं दिखी। बिहार और अन्य स्थानों पर चुनाव के वक्त बूथ पर होने वाला खूनखराबा इस बार नहीं हुआ। फिर भी इस बार हत्याएं हुईं और ये हत्याएं हिंसक वर्ग-युद्ध में विश्वास रखने वाले माओवादी समूहों ने कीं। बिहार, झारखंड, ओड़ीसा, छत्तीसगढ़ और महाराष्ट्र में इन समूहों के द्वारा हत्याएं की गईं, सार्वजनिक स्थलों को जलाया गया और दहशत फैलाई गई। पूरी ट्रेन का अपहरण कर लिया गया और अपना शक्ति प्रदर्शन करके फिर उसे छोड़ दिया गया। इस बीच उसके यात्रियों को जो भयंकर मानसिक यंत्रणा हुई होगी उसके लिए माओवादियों के पास कोई सहानुभूति का शब्द नहीं है। बंगाल में सी.पी.एम. ने अपने हिंसक अहंकार में सिंगुर और नंदीग्राम और उसके बाद लालगढ़ में जो कुछ किया उसने माओवादी समूहों को बंगाल में अपनी पकड़ मजबूत करने का मौका दिया। अब ये खबरें आम हैं कि बंगाल के गांवों और कस्बों में लोगों को सी.पी.एम. की सदस्यता छोड़ने को मजबूर किया जा रहा है और बात न मानने पर उनकी हत्या तक की जा रही है। ऐसी ही हत्याएं पिछले साल बिहार और झारखण्ड में की गयी थी क्योंकि माओवादी मारे गए लोगों को 'गलत पार्टियों' में रहने नहीं देना चाहते थे। बंगाल में सी.पी.एम. की हिंसा का विरोध करने वालों को शायद सी.पी.एम. के कार्यकर्ताओं की हत्याओं की और दल छोड़ने को बाध्य करने की इस तरह की घटनाओं की कहीं से कोई भर्त्सना नहीं सुनाई पड़ी है!

'हिंसा को किसी भी तरह से जायज नहीं ठहराया जा सकता, चाहे उसका औचित्य कुछ भी क्यों न दिया जाए' पिछले दो साल से माओवादियों को मदद पहुंचाने के आरोप में जेल में बंद बिनायक सेन ने हाल में एक पत्रकार को यह कहा जब उसने माओवादी हिंसा के बारे में उनसे सवाल किया। बिनायक जब यह बातचीत कर रहे थे, उनके चेहरे पर वह दाढ़ी नहीं थी जिसने उन्हें एक रूमानी शक्ति दे रखी थी। दाढ़ी विहीन होकर भी बिनायक उतने ही आकर्षक लग रहे थे, हालांकि उसके होने से जो एक रहस्य की आभा उनके इर्द-गिर्द थी, वह नहीं रह गयी थी।

बिनायक का यह बयान उस वाक्य के मेल में है जो कुछ महीने पहले उनकी रिहाई के लिए चल रहे आंदोलन के दौरान तैयार किए जा रहे एक पर्चे में उनके बारे में लिखा गया था : 'बिनायक हिंसा में यकीन नहीं करते हैं' लेकिन जब पर्चा छपा तब यह वाक्य गायब था। कुछ मित्रों का ख्याल था कि यह चूक थी लेकिन जब इस पर बात आगे बढ़ी तो यह पता चला कि यह न तो चूक थी और न भाषागत संपादन था। इस वाक्य को हटाया जाना एक सचेत राजनीतिक निर्णय था। जिस मित्र ने यह किया था जब उनसे बात की गई तो उन्होंने कहा कि उन्हें यह वाक्य उतना ज़रूरी नहीं लगा और इस तरह के वक्तव्य देने से ऐसा लगता है हम कुछ चीजों को लेकर अनावश्यक रूप से सुरक्षात्मक हो जाते हैं फिर उन्होंने यह कहा कि संघर्ष के अलग-अलग रूप हैं और हिंसक संघर्ष उनमें से सिर्फ एक है क्या हमें इस तरह के संघर्ष से घबराना या डरना चाहिए? उनका सवाल था।

इसमें एक दूसरा नैतिक प्रश्न भी है जिस पर

बिनायक की रिहाई से जुड़े किसी मित्र का ध्यान नहीं गया। माओवादी तरीके में यकीन रखने वाले जिस मित्र ने यह वाक्य हटाया, वह क्या यह भ्रम बनाए रखना चाहता था कि बिनायक की सहानुभूति हिंसक संघर्ष से एक स्तर पर हो सकती है! क्या इसके साथ ही यह सवाल भी उठाने की आवश्यकता नहीं कि बिनायक की गिरफ्तारी के बाद से अब तक माओवादियों ने यह बयान देना ज़रूरी नहीं समझा है कि बिनायक का उनसे कोई सांगठनिक सम्बन्ध नहीं है। क्या माओवादी यह देख कर प्रसन्न हैं कि बिना उनके प्रयास के उनका दायरा बढ़ रहा है?

माओवादी या तथाकथित क्रांतिकारी हिंसा के पक्ष में जो अनेक तर्क दिए जाते हैं, यह उनमें से सिर्फ एक वह जिसका जिक्र ऊपर किया गया यानी क्या हमें हिंसक संघर्ष से डरना चाहिए! हिंसा से असहमत लोगों को डर का शिकार बताकर उनमें हीनताबोध पैदा करना इसका उद्देश्य है। दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि इस पर विचार करना होगा कि माओवादी हिंसा बड़ी है या राज्य की हिंसा और कहीं ऐसा तो नहीं कि हम माओवादी हिंसा पर बात करके राज्य की हिंसा से, जो अधिक व्यापक है, ध्यान हटा रहे हैं! पिछले कुछ वक्त से एक और तर्क इसके साथ ही दिया जाने लगा है : माओवादी हिंसा के देशव्यापी होने का हवा खड़ा किया जा रहा है। वे दरअसल उतने बड़े इलाके में सक्रिय नहीं हैं और हमें कुछ हत्याओं और विस्फोटों की घटनाओं को इतना बढ़ा-चढ़ा कर पेश करने से बचना चाहिए और अपना धन असल हिंसा पर, जो कि राजकीय हिंसा है और इजारेदारों की लूट की हिंसा है, केंद्रित करना चाहिए। तो क्या हिंसा का विरोध करने का आधार उसकी व्यापकता है? अगर इस तर्क को मान लिया जाए तो फिर सिंगुर और नंदीग्राम में सी.पी.एम. के द्वारा की गई हिंसा पर भी इतना विरोध करने का कोई औचित्य नहीं रह जाता है। प्रसंगवश यह याद कर लेने में हर्ज़ नहीं कि सी.पी.एम. के नेता भी इस हिंसा को एक बहुत छोटे इलाके तक सीमित बता कर यह

साबित करने की कोशिश कर रहे थे कि इस पर इतने बड़े विरोध की कोई ज़रूरत नहीं थी। नरेन्द्र मोदी और भारतीय जनता पार्टी का यह पुराना तर्क है कि सिर्फ और सिर्फ गुजरात में एक छोटे कालखंड में हुई हिंसा को बार-बार याद करके उनका विरोध जो कुछ भी हुआ उसका समानुपाती नहीं है। मोदी का तो यह प्रश्न ही है कि क्या गुजरात में 2002 के बाद हिंसा हुई! तुलना हमेशा अच्छी नहीं होती, लेकिन ये उदाहरण केवल यह बताने के लिए दिए जा रहे हैं कि व्यापकता, चाहे भौगोलिक हो या कालखंड की, कोई आधार नहीं, जिसे किसी हिंसा को उचित या अनुचित ठहराने के लिए इस्तेमाल किया जाए।

यह भी कहा जाता है कि माओवादी अपने ढंग से कुछ जगहों में काम कर रहे हैं, इतने बड़े देश में हम दूसरे तरीके से काम करके कोई नया रास्ता दिखा दें! जब यह कहा जाता है तो इसके पीछे यह समझ काम कर रही होती है कि माओवादी रास्ते की अपनी जगह है और उसे समय देना चाहिए कि वह अपनी सफलता सिद्ध करके दिखा सके, वरना आपको किसने रोका है कि आप अहिंसक तरीके से संघर्ष करके जनता की परेशानियों का हल निकाल लें! लेकिन इन सारे तर्कों के पीछे चतुराई सिर्फ है माओवादी हिंसा को किसी भी विचार-विमर्श के दायरे से बाहर रखने की।

लोकतंत्र की बुनियाद यह है कि अपने प्रतिनिधि का चुनाव करने का अधिकार हर व्यक्ति के पास होगा। कोई और उसकी जगह फैसला नहीं कर सकता, चाहे उसका तर्क कुछ भी क्यों न हो। माओवादी शायद यह तर्क दे सकते हैं कि उनके पास जनता के हित की सर्वश्रेष्ठ विचारधारा है और उनकी हिंसा भी जनहित की हिंसा है जो इस विचारधारा से समर्थित है, इसलिए उस पर कोई सवाल नहीं किया जा सकता। श्रेष्ठता के इस तर्क की विडंबना के उदाहरणों की इतिहास में कमी नहीं है। क्या हमें जर्मनी, सोवियत संघ, पूर्वी यूरोप या चीन और कंपूचिया का नाम बार-बार लेना होगा यह बताने के लिए कि श्रेष्ठता के हिंसक तर्कों से यह विश्व थक चुका है?

अजमेर शरीफ के बम धमाके

चुप्पी के षडयंत्र को भेदने की जरूरत

■ सुभाष गाताडे

अभिनव भारत, मालेगांव बम धमाके में शामिल इस हिन्दू अतिवादी संगठन ने ही शायद अजमेर शरीफ बम धमाके को अंजाम दिया है। राजस्थान के आतंकवाद विरोधी दस्ते का कहना है कि अजमेर दरगाह में वर्ष 2007 में हुए धमाके की जांच के सूत्र अभिनव भारत के सदस्यों तक पहुंचते दिख रहे हैं।

एन.डी.टी.वी. को दिए एक विशेष साक्षात्कार में राजस्थान एटीएस के प्रमुख कपिल गर्ग ने इस बात को स्वीकारा है कि अभिनव भारत अब हमारे निशाने पर है। पिछले दिनों राजस्थान पुलिस की एक विशेष टीम ने मुम्बई जाकर मालेगांव धमाके के मास्टर माइंड लेफ्टिनेंट कर्नल एस पी पुरोहित और अन्य अभियुक्तों के नार्को परीक्षण और ब्रेन मैपिंग टेस्ट से जुड़े बयानों एवं रिपोर्टों को एकत्रित किया।

पुलिस सूत्रों का कहना है कि लेफ्टिनेंट कर्नल पुरोहित पर किए नार्को परीक्षण और ब्रेन मैपिंग टेस्ट ने इस बात को उजागर किया कि एक अन्य सदस्य, दयानन्द पाण्डेय, जो मालेगांव धमाके का आरोपी है, उसने अजमेर धमाके की योजना बनायी थी जिसमें दो लोग मारे गए और लगभग 20 लोग अक्टूबर 2007 में घायल हुए।

(एनडीटीवी, 'अभिनव भारत अण्डर स्कैनर फॉर 07 अजमेर ब्लास्ट' राजन महान, मंगलवार, 14 अप्रैल 2009, जयपुर)

1.

डेढ़ साल से अधिक वक्त गुजर गया जब अजमेर शरीफ के बम धमाके में 42 वर्षीय सैयद सलीम का इन्तकाल हुआ था। महान सूफी सन्त ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की इस दरगाह पर 11 अक्टूबर 2007 को बम विस्फोट में जो दो लोग मारे गए थे, उनमें एक वह भी शामिल था। हालात बता सकते हैं कि सैयद सलीम की मौत बहुत दर्दनाक ढंग से हुई। जैसा कि बताया जा चुका है इस धमाके में तमाम लोग बुरी तरह घायल भी हुए, जब वह प्रार्थना करने की मुद्रा में थे।

न सैयद सलीम की पत्नी, न ही उनके दो बच्चे और न ही भाई-बहनों का उसका लम्बा चौड़ा कुनबा, किसी ने भी इस बात की कल्पना नहीं की होगी कि इतने मृदुभाषी शख्स की मौत इतनी पीड़ादायक स्थिति में होगी। उसके दोस्तों को आज भी याद है ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती - जिन्हें गरीब नवाज़ भी कहा जाता है - उनके प्रति अपने अगाध सम्मान के चलते ही सलीम ने अजमेर में रहने का फैसला किया था, और वहां पर सौंदर्य प्रसाधन का बिजनेस शुरू किया था। इतनी लम्बी चौड़ी कमाई नहीं थी कि बार-बार अजमेर से हैदराबाद आना मुमकिन

होता, लिहाजा साल में एक दफा वह जरूर आते।

गौरतलब है कि सैयद सलीम के आत्मीयजनों के लिए उसकी इस असामयिक मौत से उपजे शोक के साथ-साथ एक और सदमे से गुजरना पड़ा और इसकी वजह थी पुलिस एवं जांच एजेंसियों का रुख जिन्हें यह लग रहा था कि सैयद सलीम खुद इस हमले के पीछे थे। मक्का मस्जिद बम धमाके और अजमेर के बम धमाके के बीच की समरूपता को देखते हुए राजस्थान की पुलिस टीम ने आकर इस बात की भी छानबीन की कि कहीं सैयद सलीम खुद आतंकवादी तो नहीं था। ऐसी घटनाओं को सनसनीखेज अन्दाज़ में पेश करने वाले मीडिया के एक हिस्से ने भी यह ख़बर उछाल दी कि मृत व्यक्ति के जेब से कुछ 'सन्देशास्पद वस्तु' बरामद हुई। (डीएनए, 13 अक्टूबर 2007)

अपने इस दावे - कि इस घटना को 'हुजी' से जुड़े आतंकवादियों ने ही अंजाम दिया है - को बिल्कुल हकीकत मान रही राजस्थान पुलिस ने इस सिलसिले में छह लोगों को हिरासत में भी ले लिया था जिसमें दो बांग्लादेशी भी शामिल थे। पुलिस के मुताबिक सिम कार्ड लगाए एक मोबाइल टेलिफोन के ज़रिए विस्फोट को अंजाम दिया गया। तत्कालीन गृहमंत्री शिवराज

पाटिल ने यह भी कहा कि बम धमाके 'सरहद पार दुश्मनों के इशारे पर' हुए हैं।

हम अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि मामले की तहकीकात कर रही राजस्थान पुलिस की टीम ने सैयद सलीम के परिवारजनों के साथ क्या व्यवहार किया होगा। माता-पिता, भाई-बहन, पत्नी सभी को खाकी के डर से रूबरू होना पड़ा होगा। ऐसे अन्य अनुभवों को देखते हुए हम सहज ही अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि समूचे परिवार को 'आतंकवादी' के परिवार के तौर पर लोगों के ताने सुनने पड़ें होंगे।

अब जबकि सच्चाई से परदा हटने को है और खुद पुलिस यह कह रही है कि अभिनव भारत के आतंकवादियों ने अजमेर बम धमाके को अंजाम दिया है, ऐसे में यह पूछना क्या ज्यादाती होगी कि पुलिस को चाहिए कि वह सैयद सलीम के परिवारवालों के नाम एक खत लिखे और जो कुछ हुआ उसके लिए माफी मांगे।

2.

आतंकवादी हमले का निशाना ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह थी, जिसे लोग ख्वाजा गरीब नवाज़ के नाम से भी जानते हैं। सूफी मत की खासियत के अनुसार इस दरगाह पर हिन्दू एवं मुसलमान दोनों प्रार्थना करने आते हैं। ख्वाजा गरीब नवाज़ का जब उर्स लगता है तो सैकड़ों हजारों लोगों का वहां ताता लगा रहता है और अजमेर शहर श्रद्धालुओं से भरा रहता है। आतंकी बम विस्फोट इस मायने में ऐतिहासिक था क्योंकि उसके सदियों पुराने इतिहास पर भी नज़र दौड़ाये तो पता चलता है कि वहां पहली दफा प्रार्थनास्थल के स्थान पर मासूमों का खून गिरा।

अक्सर जैसा कि उस वक्त की रवायत थी - जबकि हिन्दुत्व आतंक का मसला सुर्खियों में नहीं पहुंचा था - चन्द अतिवादी इस्लामिक संगठनों को इस बम काण्ड के लिए जिम्मेदार ठहराया गया। कई लोगों को गैरकानूनी ढंग से हिरासत में लिया गया, तमाम लोगों से पूछताछ की गयी, सूचना पाने के लिए तमाम लोग यातना का शिकार बना दिए गए। मीडिया भी इस मामले में पीछे नहीं रहा, उसने आतंकवादियों की योजनाओं और इस अमानवीय एवं बर्बर कृत्य के तर्ज अमल पर सनसनीखेज स्टोरी प्रकाशित की और बिना किसी सबूत के यह भी बताया कि इस घटना के सूत्र 'सरहद पार' जुड़े हुए हैं।

इस सम्बन्ध में एक अख़बार में प्रकाशित स्टोरी पर नज़र डालना समीचीन होगा, जिस अख़बार को आम तौर पर सेक्युलर विचारों का समझा जाता है। (आज भले ही हमें ऐसी स्टोरी 'मनोरंजक' लगे क्योंकि यह स्पष्ट है कि झूठ का पुलिन्दा मात्र है, लेकिन हम कल्पना कर सकते हैं कि समुदाय विशेष को निशाना बनाने में या उसका 'आतंकवादीकरण' करने में ऐसी

रिपोर्टें कितनी 'कारगर' साबित होती होंगी।)

हैदराबाद : पुलिस को इस बात के सबूत मिले हैं जो बताते हैं कि मक्का मस्जिद बम धमाके और अजमेर धमाके में जो 'इम्प्रोवाइज्ड एक्सप्लोसिव डिवाइसेस' (आईईडी) का प्रयोग हुआ वे हैदराबाद में बने थे।

बांग्लादेशी हुजी कार्यकर्ता अबू हामजा ने मई के प्रथम सप्ताह में हैदराबाद में आठ आईईडी तैयार किए और विस्फोटक सामग्री लश्कर-ए-तोइबा से जुड़े आतंकी महाराष्ट्र के शेख अब्दुल नईम ने बांग्लादेश से शहर में पहुंचायी। जबकि दो आईईडी का इस्तेमाल मक्का मस्जिद बम धमाके में किया गया, जबकि चार अन्य को अजमेर भेजा गया। मस्जिद में एक बम फट नहीं सका।

“हम लोगों ने इस ताजे खुलासे के बारे में सूचित किया है। हालांकि अभी यह पता नहीं है कि अन्य दो बम कहां भेजे गए।” उन्होंने कहा।

मस्जिद धमाके के संदिग्धों पर जो नार्को परीक्षण किया गया उस दौरान इन तथ्यों का खुलासा हुआ और आतंकी हमले के बारे में विवरण तैयार करने में हैदराबाद पुलिस को मदद मिली।

अब्दुल मोहम्मद शाहिद और खाजा, हैदराबाद के रहने वाले दोनों हुजी कार्यकर्ताओं ने - जो इन दिनों विदेशों में हैं - मस्जिद धमाके की योजना बनायी।

नईम ने विस्फोटकों को स्मगलिंग के ज़रिये हासिल किया और हस्मापेट के रहने वाले किर्नी इमरान को उसके रिश्तेदार शोएब जागीरदार के ज़रिये सौंपा।

पुलिस का कहना है कि खाजा का भाई खादेर, जो इन दिनों दुबई में हैं, उसने इस काण्ड में तकनीकी सहायता प्रदान की।

खादेर काम की तलाश में फरवरी में ही दुबई गया था और दो माह के अन्दर घर लौटा। हालांकि, वह कुछ दिनों तक हैदराबाद में ही रहा और मस्जिद धमाके के चन्द रोज पहले दुबई गया।

मई के पहले सप्ताह में मजनु, तनवीर और जबीं तथा दो अन्य के साथ - जो सभी बांग्लादेशी थे - हामजा हैदराबाद आया।

उन्होंने इमरान के घर आईईडी बनाया

और उन्हें रफी एवं कबीर को सौंपा, जो दोनों हैदराबाद के ही थे। शाहिद के बचपन के दोस्त करीम डब्बा ने मस्जिद में आईईडी रखे।

इसमें विस्फोट करने के लिए मोबाइल फोन अलार्म प्रणाली का प्रयोग किया। पुलिस के मुताबिक शाहिद, दुबई में रहने वाले उसके भाई समद के ज़रिये, विभिन्न आतंकी गुटों को वित्तीय मदद भेजता था।

डब्बा, जो एक गरीब मैकेनिक था, उसे मस्जिद में विस्फोटक रखने के लिए एक हजार रुपए दिए गए। हालांकि पुलिस ने बम विस्फोट में शामिल लगभग 25 लोगों को पहचान लिया है, इनमें से आठ को उसने षडयंत्र में शामिल होने के आरोप में पहले ही गिरफ्तार किया है। शाहिद और खाजा अभी भी फरार हैं।

आईस्क्रीम बांटे

गौरतलब है कि यही लोग गोकुल चाट और लुम्बिनी बम धमाके में शामिल बताए जाते हैं।

“हमारे पास इस बात के सबूत हैं कि हामजा ने ढाका में किन्हीं चौधरी के घर में आसरा लिया था और मस्जिद धमाके की खबर पाकर उसने आईस्क्रीम बांटे थे।”

(मक्का मस्जिद, अजमेर ब्लास्ट बॉम्ब्स मेड इन हैदराबाद, जनवरी 12, 2008, हिन्दू, मारी रामू)

वे सभी जो हिन्दोस्तां के विभिन्न बम धमाकों के मामलों की खोज खबर रखते रहे हैं वे बता सकते हैं कि मक्का मस्जिद बम धमाके (मई 2007) - जिसमें नौ निरपराधों की मौत हुई थी और बाद में हुई पुलिस फायरिंग में भी चन्द लोग मारे गए थे - की पुलिसिया कहानी धराशायी हो गयी है। यह बात अब इतिहास हो चुकी है कि किस तरह इस काण्ड के लिए पहले लश्कर-ए-तोइबा और सिमी को जिम्मेदार ठहराया गया था। हैदराबाद के विभिन्न इलाकों से निरपराध मुस्लिम युवकों को उठाया गया था और महीनों तक गैरकानूनी हिरासत में रखा गया था। सभी को जबरदस्त यातनाएं दी गयीं ताकि वह इस अपराध में अपनी सहभागिता कबूल करें। अन्ततः नागरिक अधिकार संगठनों को इन गैरकानूनी हिरासत के खिलाफ उच्च न्यायालय में हेबियस कार्पस याचिकाएं दायर करनी पड़ीं तभी पुलिस ने इनमें से कइयों को छोड़ा। हालांकि इनमें से 21 लोगों पर उसने षडयंत्र में शामिल होने के आरोप लगा कर उनके खिलाफ आरोपपत्र भी दाखिल किए। उन सभी पर राज्य के खिलाफ युद्ध छोड़ने और विस्फोटक ले जाने जैसे गम्भीर आरोप लगे।

विगत दिसम्बर माह में हैदराबाद के सातवें अतिरिक्त मेट्रोपोलिटन सेशन जज ने इनमें से 17 लोगों को बेदाग बिना शर्त बरी किया। दरअसल पुलिस के पास इनके खिलाफ कोई सबूत नहीं थे। गौरतलब है कि इन 17 लोगों की रिहाई के चन्द रोज पहले शोएब जागीरदार और बाकी तीन को भी अदालत ने सबूतों के अभाव में बरी किया था।

3.

इरफान इंजीनियर, जो एक सामाजिक कार्यकर्ता एवं लेखक हैं, उन्होंने अजमेर बम धमाके के तत्काल बाद अपने एक आलेख में कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे उठाए थे। प्रस्तुत आलेख कई वेबसाइटों एवं ब्लॉग्स पर प्रकाशित हुआ। ‘अजमेर ब्लास्ट : हू वॉन्ट्स कम्युनल डिसहार्मनी इन इण्डिया’ 14 अक्टूबर 2007, शीर्षक इस लेख में पुलिस एवं प्रशासन में मुसलमानों को लेकर व्याप्त चिन्तन पर प्रश्न खड़े किए गए थे।

...जैसा कि अन्दाज़ा था, बम धमाके के बारे में समाचार जानने के लिए टीवी खोलने के पहले ही, यह भविष्यवाणी की जा सकती थी कि इस काण्ड के लिए हुजी या ऐसा ही कोई मुस्लिम अतिवादी संगठन को जिम्मेदार ठहराया जाएगा। और वाकई, जैसे ही पुलिस एवं जांच दल के अन्य सदस्य वहां पर पहुंचे, उन्हें मालूम था कि इस अपराध के लिए किस पर दोषारोपण करना है।

हरेक को बताया जाएगा कि अधिक जांच के लिए पुलिस हुजी से सम्बन्धित किसी बिलाल को तलाश रही है। जैसे भी हो यह सच्चाई है कि लोगों की याददाश्त बहुत कमजोर होती है। हमारे मुल्क की यही दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है।

इस बम धमाके के लिए जो कथित कारण बताए जा रहे हैं उनमें यही बात प्रमुख है कि जिसने भी बम रखे वह साम्प्रदायिक दंगों को भड़काना चाहते थे। यह भी कहा गया कि सुन्नी इस्लाम का एक हिस्सा जो दरगाह के खिलाफ है, यही सम्भवतः एक कारण हो सकता है, इसलिए दरगाह को निशाना बनाया गया। अगर यही एकमात्र कारण है हुजी या किसी अन्य मुस्लिम संगठन पर दोषारोपण करने का तो निश्चित ही जांच का काम बहुत अधूरा हो सकता है और कमजोर साबित हो सकता है। दरअसल, जांच पड़ताल भी दिखावे की चीज़ बन कर रह जाएगी। दरगाह पर मुसलमानों के जाने का विरोध सिर्फ देवबन्दी और वहाबी इस्लाम के

अनुयायी ही नहीं करते हैं।

उन लोगों को भी देखें जो मुसलमानों के दरगाह जाने का एवं वहां पूजा करने का विरोध करते हैं। अस्सी के दशक में शिवसेना ने उत्तर-पूर्वी बम्बई के इलाके कल्याण में स्थित हाजी मलंग दरगाह पर कब्जा करने की मुहिम चलायी थी। वर्ष 1982 से शिवसेना के अनन्त दिग्घे ने मलंग मुक्ति आन्दोलन नामक मुहिम चलायी थी। हर साल उर्स के दिन वहां शिवसैनिक प्रदर्शन करते थे। शिवसेना का कहना था कि हाजी मलंग दरअसल मच्छिन्द्रनाथ पंथ की समाधि है और उसे हिन्दुओं को सौंपा जाना चाहिए। शिवसेना-भाजपा गठबन्धन जब 1996 में सत्ता में आया तो तत्कालीन मुख्यमंत्री मनोहर जोशी ने उद्धव ठाकरे और गणेश नाइक के साथ जाकर वहां गणेश पूजा की थी।

...प्रश्न उठता है कि आखिर क्यों न शिवसेना को बम धमाके का जिम्मेदार माना जाए क्योंकि वह भी साझे प्रार्थना स्थलों के खिलाफ रहा है ? अगर यही आधार है तो सन्देह की सुई शिवसेना की तरफ मुड़नी चाहिए।

संघ परिवार ने बाबा बुढ़नगिरी स्थल को विवादग्रस्त बना दिया, जो कर्नाटक के चिकमंगलूर से 40 किलोमीटर दूर स्थित है। बाबा बुढ़न सूफी सन्त थे और दत्तात्रेय के शिष्य थे। बाबा बुढ़नगिरी पहाड़ों में ही बस गए और उन्होंने वहां कॉफी की नींव डाली। उनकी मौत के बाद वहां एक दरगाह बना और सभी समुदायों के लोग वहां दर्शन करने के लिए पहुंचते हैं। दरगाह को यह भी सम्बोधित किया जाता है 'गुरु दत्तात्रेय बाबा बुढ़नगिरी दरगाह'। कर्नाटक में साझी संस्कृति की पहचान है वह जगह। ...संघ परिवार के लोग साझी संस्कृति की उपरोक्त जगह पर सिर्फ हिन्दुओं का दावा ठोक रहे हैं। आखिर किस वजह से संघ परिवारी संगठनों को संदिग्धों की सूची में डाला नहीं जा रहा है क्योंकि वह भी मुसलमानों द्वारा दरगाह पहुंचने के खिलाफ हैं।

लेख में इस बात को समझने की कोशिश की गयी थी आखिर एक के बाद एक प्रार्थनास्थलों को क्यों निशाना बनाया जा रहा है। लेख में यह उम्मीद भी जाहिर की गयी थी कि जांच एजेंसियां अधिक गम्भीरतापूर्वक काम करेंगी, निष्पक्ष तरीके से

सबूतों को इकट्ठा करेंगी और सभी कोणों से पड़ताल करेंगी वरना हिन्दोस्तां में ऐसे तमाम प्रसंग सामने आएंगे जहां अल्पसंख्यकों को ही निशाना बनाया गया हो।

4.

कुछ दिन पहले अजमेर बम धमाके का मसला नए सिरे से सामने आया। महाराष्ट्र आतंकवाद विरोधी दस्ते और राजस्थान आतंकवाद विरोधी दस्ते ने इस मामले को अंजाम देने वालों के बारे में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य पेश किए। गौरतलब है कि इस महत्वपूर्ण जानकारी के बारे में ज्यादातर अखबारों ने खामोश रहना ही मुनासिब समझा। कुछ गिनेचुने अखबारों ने ही इसके बारे में लिखा।

इन प्रगटीकरणों का सार यही था कि अजमेर बम धमाकों को उसी हिन्दुत्व आतंकवादी संगठन ने अंजाम दिया है, जिसने मालेगांव बम धमाके किए थे। यहां इशारा लेफ्टिनेंट कर्नल पुरोहित की अगुआई वाले अभिनव भारत की तरफ इशारा था। अंग्रेजी अखबार 'मेल टुडे' ने ('मालेगांव एक्स्प्लूज्ड हैड रोल इन अजमेर, कृष्ण कुमार, 19 अप्रैल 2009) लिखा :

महाराष्ट्र एटीएस का मानना है कि मालेगांव बम धमाके में जिन तीन संदिग्धों ने बम रखा था, उनकी गिरफ्तारी से ही हैदराबाद के मक्का मस्जिद एवं अजमेर शरीफ बम धमाके के सुराग मिल सकते हैं।

बीते शनिवार को एटीएस के वरिष्ठ अधिकारी ने मीडिया को बताया कि मालेगांव धमाके का इन दो धमाकों से सम्बन्ध है क्योंकि 'अभिनव भारत' के लोगों ने ही इसे अंजाम दिया।

इन तीन संदिग्धों के नाम हैं शिवनारायण कालसांगरा, समीर डांगे और प्रवीण मुतालिक। एटीएस इन तीनों को ढूंढ रही है, जो उसके मुताबिक नेपाल में कहीं शरण लिए हुए हैं।

एटीएस के अधिकारी का वक्तव्य महत्वपूर्ण है क्योंकि जयपुर पुलिस भी अभिनव भारत की अजमेर बम धमाके में भूमिका की जांच कर रहा है।

पुरोहित और दयानन्द पाण्डेय की आपसी बातचीत इस बात को उजागर करती है कि दोनों अन्य धमाकों में भी शामिल थे।

जबकि पाण्डेय का यह दावा था कि हैदराबाद बम धमाके को भी आई एस आई ने नहीं बल्कि हिन्दुत्व आतंकवादी संगठन ने अंजाम दिया, पुरोहित ने अपनी पीठ थपथपाते हुए कहा था कि उसने पहले मालेगांव बम धमाके जैसे दो

काण्डों को अंजाम दिया है। एटीएस का मानना है कि ये दो काण्ड हो सकते हैं मक्का मस्जिद और अजमेर शरीफ धमाके।

अजमेर शरीफ बम धमाके को लेकर 'अभिनव भारत' की तरफ घूमती सन्देश की सुई को लेकर बरबस मालेगांव बम धमाके के मामले में जारी तफ्तीश की तरफ ध्यान जाना स्वाभाविक है। इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि महाराष्ट्र एटीएस प्रमुख हेमन्त करकरे की असामयिक मृत्यु के कारण यह मामला भी उतनी रफ्तार से नहीं बढ़ पा रहा है। करकरे के स्थान पर आए नए एटीएस प्रमुख का अपना पुराना रेकॉर्ड निश्चित ही उत्साह जगाने वाला नहीं है।

यह अकारण नहीं कि ऐसे कई आरोपी - जिनका मालेगांव बम धमाके को अंजाम देने वालों से नजदीकी सम्बन्ध थे - वे आज तक गिरफ्तार नहीं किए जा सके हैं। फिर चाहे दिल्ली के अग्रणी डॉक्टर आर पी सिंह हों, अभिनव भारत की अध्यक्ष हिमानी सावरकर हों या दिल्ली के संसदीय चुनाव में अपना भाग्य आजमा रहे एक विवादास्पद प्रत्याशी हों। सुश्री हिमानी सावरकर ने पुलिस को यह भी बताया था कि मालेगांव बम धमाके की योजना की उन्हें जानकारी थी। लेफ्टिनेंट कर्नल पुरोहित ने जांचकर्ताओं को यह भी बताया था कि उन्हें विहिप के अग्रणी नेता तोगड़िया ने आर्थिक सहयोग प्रदान किया था (सीएनएन-आईबीएन, 24 नवम्बर 2009) यह जुदा बात है कि इन आरोपों का खण्डन किया था।

सीएनएन में प्रकाशित रिपोर्ट बताती है कि किस तरह विश्व हिन्दू परिषद के अन्तर्राष्ट्रीय सचिव तोगड़िया ने पुरोहित से सम्पर्क कायम किया था।

नई दिल्ली : मालेगांव बम धमाके के बारे में एक सनसनीखेज खुलासे में लेफ्टिनेंट कर्नल पुरोहित ने दावा किया है कि 'अभिनव भारत' को आर्थिक सहायता दिलाने में तोगड़िया भी शामिल रहे हैं।

मालूम हो कि 29 सितम्बर 2008 को सम्पन्न मालेगांव बम धमाके के सिलसिले में 'अभिनव भारत' की जांच चल रही है जिसमें कम-से-कम छह लोग मारे गए थे।

लेफ्टिनेंट कर्नल पुरोहित, जिसे धमाके का मास्टरमाइंड बताया जा रहा है, उसने यह दावा किया है कि तोगड़िया ने संगठन को कुछ वित्तीय मदद दी थी।

सी बी आई की जांच के दौरान पुरोहित ने यह दावे किए थे।

उसने इस बात को उजागर किया कि किसी दिन उसके पास एक व्यक्ति का फोन आया जो अपने आप को विश्व हिन्दू परिषद का महाराष्ट्र सचिव बता रहा था और उसने मुझसे यह जानना चाहा कि तोगड़िया पूछ रहे हैं कि नादेड मामले की जांच कौन कर रहा है।

हालांकि तोगड़िया ने अभिनव भारत के साथ अपने सम्बन्धों को नकारा है। उनका कहना था कि यह आरोप निराधार है, आपराधिक बदनामी करने वाले और गलत नीयत से किए गए हैं और राजनीतिक कारणों से उन्हें उछाला जा रहा है।

(पुरोहित क्लेम्स तोगड़िया फण्डेड अभिनव भारत, सीएनएन-आईबीएन, सोमवार, 24 नवम्बर 2008, 11:45 बजे, सोमवार, 24 नवम्बर 2008 को 12:53 को अपडेटेड)

हम यह भी देख सकते हैं कि मालेगांव बम धमाके के पहले ऐसे जो बम विस्फोट हुए जिनमें हिन्दुत्ववादी संगठनों के कार्यकर्ताओं की संलिप्तता प्रगट हो रही थी, उनमें जांच को आगे नहीं बढ़ाया गया।

अगस्त 2007 में हुए कानपुर बम धमाके इसका स्पष्ट उदाहरण हैं, जिनमें राजीव मिश्रा और भूपेन्द्र सिंह अरोड़ा जैसे दो नौजवान मारे गए थे। मालूम हो कि इन बम धमाकों के बाद विस्फोटकों का जो जखीरा बरामद हुआ था, उसे देख कर कानपुर के वरिष्ठ पुलिस अधिकारी ने बताया था कि इससे आधे कानपुर को तबाह किया जा सकता था। अभियुक्तों के घरों एवं ठिकानों पर की गयी छापेमारी में फिरोजाबाद के मुस्लिम बहुल इलाके के नक्शे भी बरामद हुए थे। क्या हुआ इस मामले का? राजीव और भूपेन्द्र के दो करीबियों का नार्को टेस्ट हुआ और उन्हें बाद में बाइज्जत रिहा किया गया, लेकिन उन्होंने जिन सूत्रों की ओर इशारा किया था, उन तक पहुंचने की पुलिस ने जरूरत नहीं समझी; जिनमें एक आई आई टी कानपुर का कार्यरत प्रोफेसर का नाम भी था।

इन बम धमाकों से जुड़े एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य की ओर कांग्रेस के एक नेता ने कुछ समय पहले इशारा किया था। पूर्वमुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह जो हिन्दुत्ववादी संगठनों के आतंकी रुझानों को उजागर करने में लम्बे समय से सक्रिय रहे हैं, यहां तक उनके मुख्यमंत्रित्व काल में हुए नीमच बम विस्फोट आदि को लेकर भी उन्होंने हमेशा आवाज बुलन्द की है, उनका कहना था कि यह एक विचारणीय प्रश्न है कि जबसे मालेगांव बम धमाकों के मास्टरमाइंड हिन्दुत्व आतंकवादियों को गिरफ्तार किया गया है, तबसे पूरे मुल्क में बम धमाके नहीं हुए हैं।

क्या यह सोचने का मसला बनता है या नहीं?

हिन्दू राष्ट्र में दलित

■ सुभाष गाताडे

2001 के गुजरात भूकम्प के बाद राहत व पुनर्वास कार्यक्रम के दौरान गुजराती समुदाय में सांप्रदायिकता के साथ-साथ जातिगत भेदभाव के प्रति दुनिया की आँखें खोलने वाला था। ऐसी भी खबरें हैं जिनसे ज़ाहिर होता है कि राहत व पुनर्वास कार्य कई दलित व मुस्लिम इलाकों को छुए बिना निकल गए।

2002 में संघ परिवार के संगठनों की अगुवाई में तथा मोदी सरकार के खुले समर्थन से मुसलमानों का सुसंगठित जनसंहार भी एक ऐसा मौका था जब दलितों की पीड़ा और वेदना पुनः जांच के दायरे में आयी। जहां दलितों के एक हिस्से का हिन्दुत्व के एजेंडे में शामिल होने और हिन्दूवादी सेना के पैदल सिपाही में रुपान्तरित होने की खबरें आती रहीं परन्तु सवर्णों से भरे मीडिया ने अन्य जुड़े हुए तथ्यों पर प्रकाश डालना जरूरी नहीं समझा। गुजरात के जनसंहार में थोड़ा लहू दलितों का भी बहा है। जनसंहार में 108 दलितों की जानें गयीं जिसमें से 38 अकेले अहमदाबाद में मारे गए। इनमें से कई जानें इसलिए गयीं क्योंकि ये दलित लाचार मुसलमानों की हिन्दुत्व की सेना से रक्षा कर रहे थे। ध्यान रहे कि बाबा साहेब डॉ. भीम राव अंबेडकर ने अपने अनुयायियों से हिन्दू राज को हर कीमत पर रोकने की ताकीद की थी।

1

ढाई साल के शिशु की कब्र किसने और क्यों खोदी?

सन् 2001 की बात है जब नरेश सोलंकी के ढाई साल के भतीजे की मौत हुई। बनसकांता जिले के पालनपुर ब्लॉक के हुडा गांव के इस दुखी परिवार ने लाश सामुदायिक कब्रिस्तान में दफन कर दी। जब तक कि वे घर पहुंचते खबर आई कि गांव के पटेल समुदाय के लोगों ने ट्रैक्टर से लाश खोद डाली है क्योंकि पटेलों को; जिन्होंने कब्रगाह की बगल की जगह पर कब्र कर लिया है; यह बात नागवार गुज़री थी।

इस घटना के सात साल गुज़र जाने पर भी हुडा गांव के दलित जिला कलेक्टर और ग्राम पंचायत से शमशान के लिए थोड़ी ज़मीन के आबंटन का इंतज़ार कर रहे हैं परन्तु अभी तक कोई फल नहीं निकला। पिछले ही साल जब एक वृद्ध की मृत्यु हुई तो दलितों को उसके पार्थिव शरीर को दूसरे गांव ले जाना पड़ा जहां सौभाग्यवश दलितों का अलग शमशान है। पर क्या

दलितों के लिए क्रियाकर्म की भी ज़मीन का ना होना सिर्फ़ हुडा गांव की ही कहानी है या पूरे राज्य की भी यही तस्वीर है। 'मेल टुडे' का फरवरी 2009 का अंक इस मुद्दे पर प्रकाश डालता है। खबर बताती है कि दलितों को सामुदायिक शमशान घाट इस्तेमाल नहीं करने दिया जाता और मजबूरन वे गांव के आसपास फालतू पड़ी ज़मीन को शमशान घाट की तरह इस्तेमाल करने पर मजबूर होते हैं। किसी तरह के कानूनी हक के अभाव में फिर उच्च जाति के दबंग लोग उन्हें इस ज़मीन से भी बेदखल कर देते हैं।

गुजरात राज्य ग्राम पंचायत सामाजिक न्याय समिति मंच ने सर्वे किया और पाया कि गुजरात में 657 गांव में से 397 गांवों में दलितों के लिए शमशान की ज़मीन की कोई व्यवस्था नहीं है। जिन 260 गांवों में कानूनी तौर पर ज़मीन दी गयी है उनमें से 94 में दबंग जातियों ने अतिक्रमण किया हुआ है और 26 गांवों में ज़मीन इतनी नीची है कि वहां पानी जमा हो जाता है।

यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जब अपने मृतकों को विदाई देने की बात आती है तो दलितों को भी मुसलमानों की तरह ही भुगतना पड़ता है। यही दशा मुसलमानों की है जब उनके कब्रिस्तान भी दबंग जातियों द्वारा अतिक्रमण किये जाते हैं। कुछ साल पहले गुजरात उच्च न्यायालय ने एक मामले में दखल दिया और राज्य सरकार को निर्देश दिए कि वे पाटन में मुसलमानों के कब्रिस्तान पर पुलिस व्यवस्था करे क्योंकि वहां भी अतिक्रमण की कोशिशें जारी थीं।

2

जाति बताओ, घर गंवाओ!

यदि हिन्दू राष्ट्र में मृत दलितों की यह स्थिति है तो जीवितों की स्थिति का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है जब आप दलित होकर इस उभरते हुए 'हिन्दू राष्ट्र' की राजधानी- अहमदाबाद में यदि घर ढूंढने की कोशिश करें।

यदि कोई दलित किसी ठेकेदार से घर खरीदने की पेशकश करता है तो उसे या तो साफ़ मना कर दिया जाता है या टरका दिया जाता है। किसी दलित की आर्थिक संपन्नता से कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि बिल्डरों और एजेंटों का मानना है कि यदि एक भी दलित को मकान बेचा गया तो भाव गिर जाएंगे।

यह गहरे तक पैठी हुई वर्णवादी मानसिकता का द्योतक है जिसे 2002 के जनसंहार के बाद एक नया जीवन मिल गया है। पिछले कुछ सालों में अहमदाबाद में आप एक नया रुझान देखेंगे जहां 'तकरीबन 300 पूर्णतः दलित रिहायशी सोसाइटियां' उभर कर आयी हैं और इंडियन एक्सप्रेस के रिपोर्टर का कहना है कि, 'ऐसा मर्जी से नहीं बल्कि जबरन हो रहा है' (भट्टाचार्य, डी.पी. जून 17, 2007. अ दलित? गो फाइंड अ दलित सोसायटी. इंडियन एक्सप्रेस अहमदाबाद)।

रामदेवनगर की ऐसी ही एक दलित सोसायटी में रहने वाले सेवानिवृत्त प्रशासनिक अधिकारी पी.के. वालेरा का कहना है कि 'कोई दलित यदि उच्च जाति बाहुल इलाकों में मकान खरीदने की स्थिति में भी हो तब भी बिल्डर और विक्रेता उसे मना कर देते हैं।' कुछ सामाजिक चिंतकों का मानना है कि यह अलगवा 1982 के आरक्षण-विरोधी आंदोलन से ही शुरू हो गया था परन्तु पिछले कुछ वर्षों में जाति व वर्ग भेद नये चरम पर पहुंच गया है।' यह सिलसिला महज़ पुराने अहमदाबाद तक ही सीमित नहीं है बल्कि पश्चिमी अहमदाबाद के सेटेलाइट, वस्त्रापुर, बोडकदेव, अम्बावाड़ी आदि रईस इलाकों का भी यही हाल है। सामाजिक-राजनैतिक चिन्तक अच्युत यागनिक कहते हैं, : शहर में 300 से ज़्यादा दलित सोसाइटियां हैं। अकेले चाँदखेड़ा में ही 200 ऐसी सोसाइटियां हैं, इनमें से अधिकतर 2002 के दंगों के बाद बनीं जब लोग गोमतीपुर, बापूनगर, तथा दानी लीमड़ा के इलाकों से यहां आ बसे। आपको ऐसे भी ठेकेदार मिलेंगे जो सिर्फ दलित सोसायटियां ही बनाते हैं।

हालांकि, हिन्दू एकता की छत्रछाया में दलितों को खास इलाकों में छांटकर अलग कर देने पर भी संघ परिवार को दलितों का दंगों और चुनावों में इस्तेमाल करने से परहेज़ नहीं है। यदि दंगों में घायल हुए और मारे गये लोगों के नामों पर सरसरी निगाह डालेंगे तो आप सिर्फ दलितों और मुसलमानों के ही नाम पाएंगे बाकी दूसरी जातियों के नाम बस नाममात्र के ही हैं।

मज़े की बात यह है कि दूसरे राज्य के दलितों के उपनाम की पहचान नहीं होने के कारण उन्हें आसानी से यहां घर मिल जाता है।

3

शिक्षकों की बहाली हो तो नज़रें फेर लो

गुजरात राज्य माध्यमिक बोर्ड और उच्च माध्यमिक बोर्ड की वेबसाइट के मुताबिक गुजरात में गैर-अनुदानी विद्यालयों की संख्या 3255 के आसपास है, इन्हें एक और समानता आपस में जोड़ती है। वैसे तो इनका नज़दीकी अध्ययन और भी समानतायें उजागर करेगा परन्तु जो बात सबसे पहले उभर कर आती है वह यह कि शिक्षा अधिनियम, 1972 के कानूनी प्रावधानों का

उल्लंघन करने में यह सारे विद्यालय एक हैं। यह विद्यालय शिक्षा अधिनियम के प्रावधानों का पालन करने के लिए कानूनी रूप से बाध्य है और इसका खुला उल्लंघन करने का नतीजा है कि इन विद्यालयों में मुट्ठी भर शिक्षक ही अनुसूचित समुदायों से आते हैं।

शिक्षा अधिनियम, 1972 के मुताबिक प्रत्येक विद्यालय शिक्षकों की नियुक्ति के दौरान आरक्षण नीति लागू करने को बाध्य है। नियम कहता है कि यदि कोई भी विद्यालय इस प्रावधान का उल्लंघन करता पाया गया तो उसका पंजीकरण निरस्त किया जा सकता है। अनुभव दर्शाते हैं कि गैर-सहायता प्राप्त विद्यालयों में इस नियम की खुलेआम अवहेलना की जाती है और अचरज की बात तो यह है कि राज्य सरकार बेहिचक यह कहती है कि चूंकि इन विद्यालयों को कोई सहायता नहीं दी जा रही है अतः वे उन्हें इस नियम को मानने के लिए बाध्य नहीं कर सकते हैं।

पिछले ही साल की बात है कि, इंडियन एक्सप्रेस (वडोदरा, मई 26, 2008) ने इस घोटाले का पर्दाफ़ाश किया था जिसमें, 'विद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति के दौरान नियमों के उल्लंघन पर सरकार आँखें मूंदी रखती है।' आरक्षण नीति को लागू और अवलोकन करने वाले सामाजिक न्याय व सशक्तिकरण विभाग का कहना है कि एक तर्कसंगत कार्यक्रमानुसार आरक्षण नीति के अभाव में वे संवैधानिक प्रावधानों को लागू करवा पाने में असमर्थ हैं। फिर एक प्रश्न अपने आप उभरता है कि राज्य सरकार ने इस कुरीति को रोकने के लिए अब तक कोई कारगर कदम क्यों नहीं उठाये।

दरअसल, गुजरात के एक नामी सामाजिक कार्यकर्ता ने गैर-सहायता प्राप्त विद्यालयों में आरक्षण नीति के तहत हुई नियुक्तियों पर आर.टी.आई. की अर्जी दाखिल की थी जिसमें इस बात का खुलासा हुआ। स्थिति पर चिन्ता जताते हुए उस कार्यकर्ता ने दो मांगें रखीं : नियमों का उल्लंघन करने वाले विद्यालयों का पंजीकरण निरस्त किया जाए तथा कानून नहीं लागू करने वाले अधिकारियों को सज़ा दी जाए।

4

उत्पीड़न के मामलों का उत्पीड़न

गुजरात में अनुसूचित जाति/जनजाति उत्पीड़न रोकथाम कानून के तहत दोषी पाये जाने वालों की क्या दर है? कुल 2.5 प्रतिशत और बरी हो जाने की दर 97.5 प्रतिशत। राज्य के सामाजिक न्याय विभाग ने राज्य के मुख्य सचिव व कानूनी विभागों को 23 पेजों का एक गोपनीय दस्तावेज़ भेजा है जिसमें इस कानून के तहत दायर मामले ग़लत तरीके से चलाए जाने के कई भयावह उदाहरण दिये हैं। (इंडियन एक्सप्रेस, सितम्बर 15, 2008)

रिपोर्ट में पुलिस द्वारा मामले की सही जांच नहीं करने और पब्लिक प्रोसिक्यूटर द्वारा मामले में विरोधी रुख अपनाने की घटनाओं पर विस्तार से लिखा है।

- एक्ट में यह साफ़ कहा गया है कि इस एक्ट के तहत दर्ज मामलों की जांच डी.एस.पी. की रैंक से नीचे का ऑफिसर नहीं कर सकता लेकिन 4,000 से ज्यादा ऐसे केस हैं जिनकी जांच इन्सपेक्टर या सब-इन्सपेक्टर ने की।
- आरोपी का इसलिए बरी हो जाना क्योंकि पीड़ित अनुसूचित जाति/जनजाति का नहीं प्रमाणित हो सका। कारण, केस तैयार करने में पीड़ित का जाति प्रमाण-पत्र नहीं लगाया जाना।
- पब्लिक प्रोसीक्यूटर कोर्ट में झूठा दावा करते हैं कि राज्य सरकार ने एक्ट में बदलाव किये हैं जबकि यह कानून केन्द्रीय है।
- कानून में प्रत्याशित जमानत के प्रावधान ना होने के बावजूद ऐसा किया जाना। गौरतलब है कि अनुसूचित जाति/जनजाति मामलों पर संसदीय समिति ने भी 'गुजरात में उत्पीड़न के मामलों में पेशगी जमानत' दिये जाने पर चिन्ता जतायी है। दरअसल कार्टिसिल फॉर सोशल जस्टिस के सचिव बाजीभाई पटेल ने ऐसे 400 मामलों की पड़ताल की जिनमें अदालत ने अपना फैसला सुनाया था और इसी आधार पर सरकार को मजबूर होकर 23 पेज की यह रिपोर्ट तैयार करवानी पड़ी। यह रिपोर्ट दर्शाती है कि किस तरह पुलिस महकमें में निचले से लेकर उपरी स्तर तक लापरवाही तथा उस पर पब्लिक प्रोसिक्यूटर द्वारा अपनाये गये रवैयों का नतीजा है कि उत्पीड़न अधिनियम के तहत दायर मुकदमे व्यर्थ हो जाते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि बाजीभाई ने एक अप्रैल, 1995 से 16 जिलों में स्थापित विशेष उत्पीड़न अदालतों के फैसलों का ध्यानपूर्वक दस्तावेजीकरण किया है। यह अध्ययन इस आमधारणा की भी धज्जियां उड़ाता है जिसमें यह समझा जाता है यह कानून महज़ इसलिये काम नहीं कर रहा क्योंकि या तो झूठे मुकदमे दायर किये जाते हैं या फिर दोनों पक्षों में सुलह हो जाती है, असल में राज्य सरकार के सुस्त रवैये से यह कानून पंगु पड़ा है। अतः स्थिति जस की तस है।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो ने कुछ साल पहले एक अवलोकन किया था जिस पर किसी का ध्यान नहीं गया। दलितों की उत्पीड़न की बात हो तो उत्तर प्रदेश और बिहार के बाद गुजरात का देश में तीसरा नम्बर है। (एशियन ऐज, 11

अप्रैल 2003) यदि इससे पहले रिकॉर्ड में देखें तो वाइब्रेन्ट गुजरात की कड़वी तस्वीर सामने आती है। 1998 की रिपोर्ट के अनुसार पूरे देश में दलित उत्पीड़न की कुल 25,617 घटनायें हुयीं जिसमें से अकेले गुजरात में 8,894 घटनाएं घटीं। दलित महिलाओं के साथ बलात्कार के 28 मामले दर्ज हुए जो कि पूरे देश में उस साल सातवें नम्बर पर था।

लेकिन जब अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के खिलाफ हो रहे हमलों को रोकने की बात आती है तो भाजपा सरकार हाथ पर हाथ धरे बैठी रही। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (उत्पीड़न रोकथाम) अधिनियम, 1989 के तहत प्रत्येक जिले में एक विशेष दलित न्यायालय की बात रखी गयी थी जो अभी तक हकीकत से दूर है। गुजरात के 26 में से कुल 10 जिलों में ही ऐसी विशेष अदालतें हैं, लेकिन दलित कार्यकर्ताओं के अनुसार इनमें से एक भी अदालत दलित मुद्दों को कोई विशेष दर्जा नहीं देती।

5

अम्बेडकर का पूर्वानुमान

धर्मनिरपेक्ष-जनतांत्रिक भारत के पहले 'हिन्दू-राष्ट्र' में दलित स्थिति पर एक से एक आंकड़े दिये जा सकते हैं लेकिन हमारा मुख्य उद्देश्य इस मुद्दे पर आंकड़ों का बैंक नहीं खड़ा करना है। हमारा उद्देश्य इन दो मुख्य बिन्दुओं को उठाना है: दलितों का दायम दर्जा सांप्रदायिक विरोधी आंदोलन का मुख्य मुद्दा क्यों नहीं बन पा रहा है।

दलितों का एक हिस्सा क्यों हिन्दुत्व के प्रति आसक्त है, या यह हिन्दू धर्म के भीतर आर्थिक रूप से ऊपर उठने का संकेत है अथवा यह अल्पसंख्यक समुदायों के प्रति जमा नफरत का द्योतक है जो अपने आप हिन्दुत्व के एजेन्डे पर चलने को तैयार है।

यहां इस बात पर ज़ोर देना होगा कि पूरे गुजरात में हज़ारों की संख्या में संघ परिवार के घटकों ने खास-खास जगह बोर्ड लगवाये हैं जो कहते हैं कि, 'आप हिन्दू राष्ट्र के अमुक इलाके में प्रवेश कर रहे हैं,' जो कि पूर्णतः गैरकानूनी है और पूरे समाज से 'पृथक' होने की खुली घोषणा करता है।

ऐसे मौके पर अम्बेडकर के हिन्दू राष्ट्र पर विचार याद आते हैं। भारत के विभाजन से पहले लिखी गयी किताब, 'पाकिस्तान और पार्टिशन ऑफ इंडिया' (पृष्ठ 358), में वे खुली भविष्यवाणी करते हैं: 'यदि हिन्दू राज हक़ीकत बनता है तो यह देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य होगा। हिन्दू चाहे जो कहे उससे फर्क नहीं पड़ता क्योंकि हिन्दूवाद स्वतंत्रता, समानता व भाईचारे का दुश्मन है। अतः वह जनतंत्र का भी दुश्मन है। हमें हिन्दू राज्य को रोकने की हरसंभव कोशिश करनी चाहिए। क्या कोई सुन रहा है?'

सांस्कृतिक स्वतंत्रता के समर्थन में महिलाएं

■ अस्मिता रिसोर्स सेंटर फॉर वीमेन

रामसेना के युवकों द्वारा जनवरी 2009 में मैंगलोर पब में महिलाओं पर किए गए हमले के बाद अस्मिता रिसोर्स सेंटर के प्रयास से सामूहिक विरोध करने का निर्णय लिया गया। परिणामतः वीमेन फॉर कल्चरल फ्रीडम नाम के संगठन का उदय हुआ। इसके साथ ही, राम सेना ने यह घोषणा की कि वेलेंटाइन डे पर जो भी युगल एक-साथ दिखेंगे, उन्हें या तो एक-दूसरे के साथ शादी करनी होगी अथवा लड़कियों को इस बात पर बाध्य किया जाएगा कि वे लड़कों की कलाई पर राखी बाँधें।

इसके विरोध में मंच ने पैम्पलेट्स बांटे, कॉलेजों का दौरा किया और विद्यार्थियों से बात-चीत के दौरान उन्हें इस विषय पर सोचने के लिए कहा कि नागरिक होने के नाते क्या हमें इस बात की आज़ादी देनी चाहिए कि कोई अन्य व्यक्ति हमारे लिए क्या सही और क्या गलत है-इसका निर्णय ले।

- क्या स्त्रियों या पुरुषों के लिए भिन्न नैतिक मानदंड है?
- क्या हमें किसी को यह बताने की स्वतंत्रता देनी चाहिए कि नैतिक मूल्य क्या हैं?
- क्या हमें व्यक्तिगत चुनाव के अधिकार को छीनने की अनुमति देनी चाहिए?
- क्या स्त्रियों को अपने स्वीकृत व्यवहार के संबंध में किसी अन्य को तय करने का अधिकार देना होगा?
- क्या हमें महिलाओं को सार्वजनिक क्षेत्रों से हटाने के लिए हिंसा का प्रयोग करने की अनुमति देनी होगी?
- क्या हमें लोगों को सांस्कृतिक मानदंड तय करने के लिए राजनीतिक लाभ उठाने की अनुमति देनी होगी?
- जब धार्मिकता और नैतिकता के नाम पर एक-एक करके हमारे अधिकारों का हनन हो रहा हो, क्या हमें चुप रहना होगा?
- इसके लिए सार्वजनिक विरोध का आह्वान किया गया और यह कहा गया कि वैचारिक स्वतंत्रता का आदर किया जाना चाहिए।

वेलेंटाइन डे की पूर्व संध्या, 13 फरवरी को मंच द्वारा एक सभा का आयोजन किया गया। इसमें सौ से अधिक लोगों द्वारा भाग लिया गया। 12 संगठन सदस्य और मंच के मीडियाकर्मी तेलुगु विश्वविद्यालय में एकत्र हुए। इस सभा में उर्दू लेखिका श्रीमती जीलानी बानो, दलित स्त्री शक्ति की झाँसी, अंकुरम की सुमित्रा, भूमिका की संपादिका के. सत्यवती,

अंतरा की सागरी रामदास, शाहीन की जमीला निशात, तृप्ति मकदानि (एक छात्रा), लेखिका तेलीपल्ली रवि, ऑक्सफेम की गिरिजा, अंकुरम से मीर, जाबीन, नेशनल अलायंस ऑफ वीमेन की वसंत, मुस्लिम वीमेंस राइट नेटवर्क की सुल्ताना और अस्मिता रिसोर्स सेंटर फॉर वीमेन की कल्पना वक्ता के रूप में शामिल थीं।

जीलानी बानो ने कहा कि यह समय इस बात पर चर्चा करने का नहीं है कि किसने क्या किया, बल्कि यह समय सक्रिय प्रतिरोध का है। उन्होंने उन सब लोगों के खिलाफ जिन्होंने धर्म के नाम पर महिलाओं के साथ अन्याय किया था, सख्त वक्तव्य दिया।

सुश्री झाँसी ने एक गाने के साथ अपना वक्तव्य आरंभ किया जिसमें आग की लपट की तरह आगे बढ़ने, समुद्री लहरों की तरह गर्जना करने और शेर की तरह बहादुर होने का आह्वान किया गया था। उन्होंने रसोई की दीवारों में कैद जिंदगी का विरोध किया। उन्होंने हिंदूत्ववादी शक्तियों को एक ऐसी स्पष्ट नीति के साथ सामने आने की चुनौती दी जो महिलाओं को अपनाती चाहिए क्योंकि इस देश में अनेकों संस्कृतियाँ, जातियाँ और सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं। क्या वे हमें बता सकते हैं कि कौन सी संस्कृति भारतीय है ताकि हम उसका अनुसरण कर सकें? उन्होंने कहा कि जिस संस्कृति पर वे हमला कर रहे हैं यह वही संस्कृति है जिसे बी.जे.पी. अपने शासनकाल में नई आर्थिक नीति के रूप में लाई थी। इसके परिणामस्वरूप वैश्वीकरण और निजीकरण आया जो हिंदूत्ववादी शक्तियों की ईजाद थी और हम सब उससे जूझ रहे हैं। तब संस्कृति को क्या हुआ था जब बाल ठाकरे और जैक्सन एक ही मंच पर थे?

सुश्री जमीला निशात ने कहा कि उन्हें हुदूद के कानून द्वारा महिलाओं के शोषण और वर्तमान घटनाओं में कोई विशेष अंतर नहीं दिखता। ये सब महिलाओं को वस्तु के रूप में देखते हैं और उनके आंदोलन को दबाना चाहते हैं। उन्होंने पूछा कि महिलाओं पर नियंत्रण का क्या कारण है? जब वे 16 साल की लड़की को किसी मुस्लिम लड़के से बात करने से रोकते हैं तो क्या वे इस बात को भूल जाते हैं कि इसी संस्कृति में योगिनियों ने सूफियों से बात की थी?

सुश्री सुमित्रा ने कहा कि उन्हें जीलानी बानो के शब्द

याद हो आते हैं कि जो अन्याय को चुपचाप देखते हैं, वे अन्याय के भागीदार होते हैं। उन्होंने इस तथ्य की ओर संकेत किया कि इसे केवल महिलाओं के मुद्दे पर देखा जा रहा है। उन्होंने कहा कि इसमें हर युवा को शामिल किया जाना चाहिए और उन्हें यह बताया जाना चाहिए कि कौन लोग इस अन्याय का शिकार हो सकते हैं।

भूमिका की सुश्री के. सत्यवती ने कहा कि कई वर्ष पहले हमने उस स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया था जिसका लाभ हम आज तक उठा रहे हैं। अचानक हमें यह पता चलता है कि हमें फिर एक बार उन्हीं मुद्दों पर फिर लड़ना होगा। वे प्रमोद मुतालिक के उस बयान से नाराज थे कि महिलाओं को अपने पतियों के लिए रोटियाँ सेंकनी चाहिए। उन्होंने कहा कि यह बयान हर किसी को गुस्सा दिलाएगा लेकिन इस संबंध में सरकार अथवा किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति की ओर से कोई बयान नहीं आया। उन्होंने कहा कि इसके लिए लगातार प्रभावी कदम उठाने चाहिए और यह कदम एक प्रभावकारी आंदोलन हो सकता है अन्यथा इसके परिणाम आने वाली पीढ़ियों के लिए खतरनाक हो सकते हैं।

सुश्री गिरिजा ने कहा कि नौजवानों को इन मुद्दों से अवगत कराया जाना चाहिए। हमें लड़कियों को आगे लाने और साहस के साथ बोलने के लिए प्रोत्साहित करना होगा। क्योंकि आने वाले समय में इसका परिणाम उन्हें झेलना है, हमें उन्हें इसके बारे में बताना होगा और आंदोलन में शामिल करना होगा।

सुश्री सागरी ने कहा कि वह सरकार जो सख्त आतंकवादी अधिनियम ला सकती है, उसके गृहमंत्री हम पर हो रहे अत्याचार के संबंध में मौन हैं। मार्टिन निमूलर को उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा कि वे शुरू में साम्यवाद के रूप में आए, मैं कुछ नहीं बोला क्योंकि मैं साम्यवादी नहीं था, फिर वे श्रम संघ के विरोध में आए, मैं कुछ नहीं बोला क्योंकि मैं यहूदी नहीं था। तब वे मेरे विरोध में आए, तब कोई भी बोलने वाला नहीं बचा था।

उन्होंने युवा पीढ़ी से बात करने की सलाह दी ताकि न केवल अपनी बात कह सकें बल्कि एक सक्रिय भागीदारी दे सकें। उन्होंने अपनी बात एक गाने के साथ समाप्त की- यह आक्रमण मुझ पर भी हो सकता था, लेकिन तब वहाँ तुम थे, यदि तुम स्वतंत्रता के लिए लड़ सकते हो, तो मैं क्यों नहीं ऐसा कर सकता।

सुश्री वसंत ने कहा कि हर कोई अतिवादी शक्तियों की धमकियों से डरा हुआ है। उन्होंने कहा कि वे आत्मसम्मान के शब्द का प्रयोग करते हैं जो कि एक खतरनाक शब्द है और इसके लिए अभिनेत्री खूशबू को माफ़ी माँगनी पड़ी थी। एक-साथ रहने, प्रेम करने अथवा विवाह करने के लिए अनेकता

आवश्यक है। क्योंकि यहाँ मिश्रित होने की संस्कृति है अतः विभिन्न समुदायों के लड़के और लड़कियों को आपस में एक-साथ रहने दिया जाए, तभी यह मिश्रण संभव है। उन्होंने कहा कि वे मदर डे, फादर डे, जैसे बाजार-आधारित दिनों को मनाने के पक्ष में नहीं हैं लेकिन वे चयन करने की स्वतंत्रता की पक्षधर हैं।

सुश्री शरीफा ने कहा कि हमें उन समाजों से सीखना चाहिए जो नैतिकता के नाम पर बनाए गए नियमों की जबरन अनुपालना करने के कारण पिछड़े रह गए हैं। हमें ऐसा समाज बनाना होगा जो वैचारिक भिन्नता का स्वागत करते हुए महिलाओं को समान समझे।

सुश्री कल्पना ने कहा कि तालिबानाइज़ेशन समस्यात्मक है। हमें हिंदुत्व संगठनों को इसलिए बुरा नहीं कहना चाहिए क्योंकि वे किसी अन्य बुरी शक्तियों जैसा दिखता है। उन्होंने कहा कि यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि जिन बातों के बारे में हमारा आलोचनात्मक दृष्टिकोण था उन्हीं बातों का आज हम समर्थन कर रहे हैं। यह हमें प्रतिक्रियावादी बनाता है जो एक अच्छा विकास नहीं है।

तब मंच ने एक साझा वक्तव्य जारी किया जो इस प्रकार है :

भिन्न संस्कृतियों, धर्मनिरपेक्षता और स्वतंत्रता के देश की नागरिक महिला होने के नाते हम संस्कृति और परंपरा के नाम पर बढ़ती हुई हिंसा से चिंतित हैं। सार्वजनिक नैतिकता की स्थापना के नाम पर किसी समुदाय को महिलाओं का शाब्दिक या शारीरिक रूप से अपमान करने का अधिकार नहीं है। हम अधिकांश राजनीतिज्ञों के दिशाहीन रूढ़िवाद के प्रति चिंतित हैं।

इस मुद्दे का संबंध नैतिकता से न होकर नागरिकता और मानवता से है। देश के नागरिक होने के नाते, महिलाओं को अपनी पसंद का पहनावा चुनने का, अपनी पसंद के मित्रों से मिलने का और सभी समुदायों के स्त्री-पुरुषों के साथ स्वतंत्रता से घूमने का अधिकार है। वैश्वीकरण से उपजी सामाजिक और भावनात्मक असुरक्षा को कोई भी राजनीतिक शब्दजाल या धोखेधड़ी से मुक्ति नहीं दिला सकता।

विमेन फॉर कल्चरल फ्रीडम ने हमारे समाज में उपजी इस सिकुड़न की वृत्ति का मुकाबला करने के लिए कॉलेजों, विश्वविद्यालयों और अन्य संस्थाओं में लगातार बैठकें करने का निर्णय लिया है। डब्ल्यू.सी.एफ. यह अनुभव करता है कि यह संस्कृति और नैतिकता के नाम पर रामसेना जैसे स्वचयनित संस्कृति के रक्षकों द्वारा, एक ऐसे देश में जिसका संविधान अपने नागरिकों को बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देता है, महिलाओं पर हिंसा है और यह न तो न्यायिक है और न ही स्वीकार्य है।

स्त्रियां कब तक इस कदर जलती रहेंगी?

■ अंजलि सिन्हा

भारत में सबसे अधिक युवा महिलाएं जल कर मरती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का मेडिकल जर्नल 'लानसेट' में छपे ताज़े अध्ययन की रिपोर्ट चर्चा का विषय बनी है। मालूम हो कि जलने की इन घटनाओं में "रसोई की दुर्घटनाएं, आत्मदाह या घरेलू हिंसा के विभिन्न प्रकार" शामिल रहते हैं। अध्ययन के मुताबिक 15 से 34 साल के उम्र की महिलाओं की संख्या मरने वालों में सबसे अधिक है। अध्ययन के मुताबिक 1.63 लाख महिलाएं सालाना जल कर मरती हैं जो कि सालाना सभी मौतों का 2 फीसदी है और इसमें 1.06 लाख महिलाएं युवा हैं। अगर हम भारतीय पुलिस के आंकड़ों पर गौर करें जो 'नेशनल क्राइम रेकार्ड ब्यूरो' के आंकड़ों पर आधारित होते हैं तो पता चलता है कि इसमें मौतों की संख्या काफी कम बतायी गयी है। ब्यूरो के आंकड़ों की तुलना में 'लानसेट' के आंकड़े छह गुना ज्यादा हैं।

अगर जल कर मरने वालों में स्त्रियों एवं पुरुषों का अनुपात देखें तो पता चलता है कि पुरुषों की तुलना में तीन गुना महिलाएं जल कर मरती हैं। इन मौतों में अधिकांश रसोई में होने वाली दुर्घटनाओं के कारण जलना बताया गया है जिसमें अलग-अलग कारणों से हत्या और आत्महत्या दोनों शामिल हैं। यह आंकड़ा वाकई अचम्भित करने वाला है कि हमारे देश में इतनी बड़ी संख्या में महिलाएं जल कर मर जाती हैं और समाज में यह मुद्दा उद्बलित करने वाला मसला नहीं बन सका है। कहने के लिए हमारे यहां घरेलू हिंसा रोकने के लिए कानून बना है, लेकिन उसके लिए मामूली बजट आबंटन दिखता है। अगर आंध्र प्रदेश में यह आंकड़ा 10 करोड़ है तो पूरे मध्यप्रदेश के लिए यह आंकड़ा 2.92 करोड़ रुपए है।

किसी भी अस्पताल के बर्न वार्ड का जायजा लेकर इस हकीकत से रू-बरू हुआ जा सकता है कि वहां जली या झुलसी महिलाएं अधिक हैं या पुरुष और वे किस तरह जले हैं। पुरुष भी जलते हैं लेकिन उनके लिए अपना ही घर खतरा नहीं होता। वे कभी दंगों की आग में तो कभी जातीय हिंसा की चपेट में आकर जल जाते हैं।

कुछ साल पहले गुजरात से खबर आयी थी कि वहां हर साल 300 से अधिक महिलाओं की स्टोव फटने से मौतें हुईं। इन आंकड़ों से चिन्तित किसी पत्रकार ने जब थोड़ी तहकीकात की तो पता चला कि यह मौतें एक ऐसे समय में हो रही हैं जब पम्प करने वाले स्टोव की तुलना में -जिनके फटने की सम्भावना होती है - बाती स्टोव का प्रयोग होता है जिसके फटने की सम्भावना नहीं होती है। जाहिर है कि ये तमाम मौतें सन्देहास्पद मौतें कही जा सकती हैं जिसमें कहीं न कहीं उनके 'आत्मीय जनों' का हाथ दिख सकता है। ताज्जुब की बात यह है कि हर साल ऐसी घटनाओं के रेकार्ड पुलिस थानों में दर्ज होने के बावजूद उन्हें इन मौतों पर सन्देह नहीं होता और दुर्घटना का मामला दर्ज कर फाइल बन्द की जाती है। सन 2005 में जहां पूरे राज्य में 343 महिलाएं ऐसी दुर्घटना का शिकार हुईं तो वर्ष

2006 के नवम्बर माह तक यह आंकड़ा 330 को पार कर चुका था।

यह भी मुद्दा ध्यान देने लायक है कि हमारे समाज में जला देने या जल जाने की प्रथा इतनी प्रचलित कैसे हुई। मनु के विधान पर संचालित समाज में अपने पति की मौत के बाद उसकी चिता पर उसकी पत्नी खुद आत्महत्या कर लेती थी या परम्परा तथा रिवाज के नाम पर उसे जलने के लिए मजबूर किया जाता था। मुगलकाल में राजपुताने में जौहरव्रत का उल्लेख मिलता है जहां राजा की हार होने पर उसकी रानियां आग में कूद कर जौहर कर लेती थीं। निश्चित ही हमारे धार्मिक रीतिरिवाजों में कहीं इसकी स्वीकृति है जैसे हवन करना, होलिका जलाना आदि।

कहा जाता है कि कुछ का पीड़ा भरा जीवन तो जलने से खत्म हो जाता है, लेकिन कुछ जो जलती तो नहीं है लेकिन विभिन्न प्रकार के उत्पीड़नों के चलते वह ठीक से जीती भी नहीं हैं। ऐसों का तो कोई आंकड़ा मौजूद नहीं है। दहेज का ही नहीं बल्कि 'असुन्दर' होने का, बेटी पैदा करने का, घर से निकाले जाने का आदि कई प्रकार के उत्पीड़नों की वे शिकार होती हैं।

सोचने वाली बात है कि यदि किसी व्यक्ति से किसी का तालमेल नहीं बैठता हो, जीवनशैली में लोग एक-दूसरे के साथ समझौता नहीं कर पा रहे हों तो अलग होने का रास्ता चुनने के बजाय हत्या जैसे अपराध को लोग अंजाम क्यों देते हैं। तलाक की बढ़ती दर को लेकर अक्सर चिन्ता प्रकट की जाती है लेकिन यदि यह विकल्प नहीं होगा तो अपराध और बढ़ेंगे। मारने वाला व्यक्ति या तो अपने अपराध के अंजाम पर पहले नहीं सोच पाता है या बच निकलने की गुंजाइश होती है इसलिए भी लोग ऐसा कर लेते हैं। लड़की को खुद तथा उसके मायके वालों को भी समस्या का अन्दाजा तो होता है लेकिन वे भी सही समाधान निकालने के बजाय इन्तजार करते हैं कि सब ठीक हो जाएगा।

दरअसल होना तो यही चाहिए कि ससुराल वालों की छोटी से छोटी मांग का प्रतिरोध शुरू से हो, जबकि लड़कियां भी प्रयास करती हैं कि उनकी मांगें पूरी हों और उसके सहारे ससुराल में उनका मान-सम्मान बढ़े। उन्हें भी अब यह सीखने और जानने की जरूरत है कि उनका सम्मान और आत्मसम्मान इसी में है कि वे स्वयं अपनी घर-गृहस्थी चलाने लायक बनें, न इस घर (मायके) का आसरा रखें न उस घर (ससुराल) का। ऐसी स्थिति में यदि कोई ससुराली कुछ मांग करे तो उसे टके सा जवाब मिले और आइन्दा ऐसा सोचे भी न इसका भरपूर संकेत पहले ही मिल जाए। लड़के भी जानबूझ कर अपने घरवालों के सामने स्पष्ट पक्ष नहीं लेते हैं या वे भी बिन मेहनत कुछ हासिल हो जाए इसी फिराक में रहते हैं, उन्हें भी पहले ही दिन पता चलना चाहिए कि उनकी हद क्या है !

(अंजलि सिन्हा 'स्त्री अधिकार संगठन' से सम्बद्ध हैं और सत्यवती कालेज (सांध्य) में कौन्सिलर के पद पर कार्यरत हैं।)

युद्ध क्यों जारी रहते हैं?

■ मेरी बी. एण्डरसन

...पिछले अंक से जारी

राहतकर्मियों के लिए युद्ध को समझना क्यों ज़रूरी है?

चूंकि सहायता युद्ध के संदर्भ का एक हिस्सा बन जाती है और इस तरह उस युद्ध का हिस्सा भी जिसमें यह दी जाती है, इसलिए राहतकर्मियों को उन स्थानों पर चल रहे संघर्षों के इरादों और लक्ष्यों को समझना ज़रूरी है जहां वे काम करते हैं। उनके लिए ज़रूरी है कि वे प्रतिस्पर्धी समाजों के लोगों की अलग-अलग आवाज़ों को सुनें और किसी लक्ष्य के प्रति समर्पण के स्तर (या इसकी कमी) और बताए गए उद्देश्यों की वैधता एवं ऐतिहासिक सत्यता (या इसकी कमी) का आंकलन कर लें।

संघर्षरत समाज में लोग संघर्ष के बारे में आखिर कैसा महसूस करते हैं? क्या वे इंसाफ़ के लक्ष्य के लिए प्रतिबद्ध होते हैं, या फिर वे सत्ता पाने में लगे नेताओं की जोड़-तोड़ का शिकार हो जाते हैं? किस तरह के लोग किस तरह का रवैया अपनाते हैं? इस संघर्ष के संदर्भ में कौन फ़ायदे में रहता है और कौन नुक़सान में? क्या हर कोई युद्ध से प्रभावित है या फिर देश के कुछ हिस्सों में काफ़ी हद तक शांति बरकरार है?

पिछले कुछ सालों के दौरान संघर्ष प्रभावित हिस्सों में हमने जो देखा है और सुना है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि ये कुछ सवाल हैं जिन पर राहतकर्मियों को अवश्य ध्यान देना चाहिए।

न्याय के आदर्श पर आधारित पूर्वानुमान के साथ संघर्ष में उतरने का मतलब है कार्यक्रम संबंधी ग़लतियां करने का ख़तरा उठाया जाए। साझा विशेषताओं की जानकारी और पूर्व में चर्चित महत्वपूर्ण मतभेद स्थानीय विचारों को सुनने और लोगों को विभाजित करने की बजाय उन्हें जोड़ने के अवसरों को पहचानने का प्रारंभिक बिंदु उपलब्ध कराते हैं। सहायता के लिए युद्ध या शांति को बढ़ाने के लिए मिलने वाले अवसर समय के हिसाब से बदलते रहते हैं। फिर भी नागरिकों के बीच छिड़े गृह-युद्ध के तीन चरण

नज़र आते हैं। ये चरण स्थायी या क्रमिक नहीं हैं। कहने का मतलब है कि युद्ध की प्रगति कभी-कभी नज़रियों में आश्चर्यजनक बदलाव ले आती है। हमें यह भी पता लगता है कि किसी युद्ध क्षेत्र में कुछ लोग हमारे द्वारा कहलाने वाली पहली स्थिति में हो सकते हैं जबकि कुछ दूसरे लोग दूसरी या तीसरी स्थिति में हो सकते हैं। फिर भी हम कुछ युद्धों के दौरान देखे गये तीनों चरणों की रिपोर्ट पेश कर रहे हैं क्योंकि उनके बारे में सोच राहतकर्मियों को उन विभिन्न अवसरों के प्रति आगाह कर देगी जो समय-समय पर उत्पन्न होते हैं ताकि सहायता के अधिकतम प्रभाव पड़ सकें।

दक्षिणी सूडान में सहायता कर्मचारियों का एक समूह वहां के युद्ध का विश्लेषण कर रहा था। कर्मचारी इस नतीजे पर पहुंचे, “वास्तव में यहां तीन युद्ध लड़े जा रहे हैं। ‘असली’ युद्ध विकसित और विकासशील देशों के बीच लड़ा जा रहा है। यह युद्ध अहमियत रखता है क्योंकि यह दो विभिन्न समूहों की समान राजनीतिक ढांचे के भीतर रहने की आज़ादी से जुड़ा है। यह एक राजनीतिक समाधान मांगता है, और ऐसा करने के लिए हमारे पास बहुत कम अधिकार हैं सिवाय इसके कि हम अपनी एजेंसियों पर वकालत करने की भूमिका अख़्तियार करने का ज़ोर डालते हैं।”

“उधर विकासशील देशों में बिखरे हुए समूहों के बीच भी युद्ध चल रहा है। लेकिन इसके पीछे उत्तरी व दक्षिणी विश्व के बीच चल रहे युद्ध में शामिल मुद्दे होने की बजाय सत्ता की कामना कर रहे नेताओं के बीच छिड़ी प्रतियोगिता ज़्यादा ज़िम्मेदार है। इसके अलावा, अंतर्ग्रामीण ‘पशु छापे’ या ‘ठगी’ भी शामिल है।”

“लोगों के लिए यह सोचना आसान है कि पूरी लड़ाई विकसित एवं विकासशील देशों

के आपसी संघर्षों का परिणाम हैं और युद्ध को समाप्त किए बिना इनमें से किसी के बारे में कुछ भी नहीं किया जा सकता है। बहुतों का मानना है कि विकासशील देशों के बीच परस्पर युद्ध और यहां तक कि छापे भी एक ही युद्ध के हिस्से हैं। लेकिन अगर हम यह देख सकते हैं कि वास्तव में तीन युद्ध हैं तो हम यह भी सोच सकते हैं कि हमारे द्वारा दी जा रही सहायता कैसे उन्हें बढ़ा रही है और जारी रखे है। विकासशील देशों के आपसी संघर्ष और पशु छापे उन्हीं स्थानों पर होते हैं जहां हम सहायता दे रहे होते हैं और वे उन्हीं संसाधनों से काम चलाते हैं जो हम उन्हें दे रहे हैं। हम इसे बदल सकते हैं। हम सहायता देने के नए तरीके ढूंढ सकते हैं ताकि हमें इन दो युद्धों को मजबूत न बनाना पड़े।”

समूह द्वारा किसी संघर्ष को इसके विभिन्न हिस्सों में बांटने से समूह के सदस्यों को अपने कार्यक्रमों को ज़्यादा प्रभावी बनाने के लिए फ़ौरी तरीके ढूंढने में मदद मिली। बाद में दूसरे सत्रों में सूडान में कार्यरत सहायता कर्मचारियों ने विकसित और विकासशील देशों के बीच युद्ध से जुड़े मुद्दों से भी रू-ब-रू होने के कार्यक्रम संबंधी नज़रियों की पहचान की। उदाहरण के तौर पर, पशु व्यापार की नियमित व्यवस्थाओं में विकसित एवं विकासशील देशों के अंतर्सम्बंध अवश्य दिखाई देते हैं। साथ ही, गठबंधनों में बदलाव का मतलब है कि दोनों पक्षों के लोग कबीलाई संबंधों और धर्मों को परस्पर बांटते हैं। उदाहरण के तौर पर, दोनों ही तरफ़ दिनका मूल के लोगों की बहुत बड़ी संख्या है। सहायता कार्यक्रम इस तरह तैयार किए जा सकते हैं जो इन संबंधों को उन तरीकों से बढ़ाएं जो भावी राजनीतिक समझौते की तरफ़ व्यवहार बढ़ाने और उसे स्थायित्व प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित करते हों।

जब पहले पहल हिंसा होती है तो अनेक लोग कहते हैं, “यह हम अपने साथ क्या कर रहे हैं? हम सालों-साल

मिल-जुल कर रहे हैं। यह तो पागलपन है। निःसंदेह यह रुकना चाहिए।” लेकिन युद्ध जारी रहने के कुछ महीनों बाद युद्ध की विभीषिका और वेदना के व्यक्तिगत अनुभव बढ़ने लगते हैं। इस दूसरे चरण पर अनेक लोग आश्वस्त हो जाते हैं कि वे दूसरे पक्ष पर विश्वास नहीं कर सकते और यह कि उन्हें युद्ध अवश्य जीतना चाहिए। अनेक युद्धों में इस चरण में भी जबकि लोग जीत के लिए प्रतिबद्ध हैं, कुछ लोग खुल कर स्वीकार करने लगेंगे कि युद्ध की शुरुआत राजनीतिक नेताओं द्वारा अपने फ़ायदे के लिए की जाती है। यह जानते हुए भी कि विजय और इंसाफ़ एक समान नहीं हैं वे जीत के लिए प्रतिबद्ध होते हैं।

अंत में, तीसरे चरण में अनेक लोग यह कहते हुए सुने जा सकते हैं, “यह बेतुका है। हम अपने साथ क्या कर रहे हैं? हम पहले मिलजुल कर रहे हैं, हम दोबारा मिल-जुल कर रह सकते हैं। इससे बेहतर तो कुछ भी हो सकता है।” लोग युद्ध से थक चुके हैं और महसूस करने लगे हैं कि वैचारिक स्तर पर इसका कोई महत्व नहीं है। युद्ध को जारी रखने के लिए बलिदान देने का अब कोई मतलब नहीं रहा।

हमें कोई नमूना नहीं मिला। इसलिए हम इस बारे में कोई भविष्यवाणी नहीं कर सकते कि कुछ गृह युद्ध क्यों अनेक सालों तक चलते रहते हैं और क्यों दूसरे समाज छोटी अवधि में ही शांति के लिए तैयार हो जाते हैं। जैसा कि पहले कहा गया है कि किसी देश के कुछ हिस्से या किसी देश में कुछ लोग तीनों में से किसी एक चरण में हो सकते हैं जबकि दूसरे हिस्से या दूसरे लोग किसी अन्य चरण में। वे तरीके, जिनके माध्यम से राहतकर्मी उन लोगों से जुड़ सकते हैं जो युद्ध से नाता तोड़ने को तैयार हैं और ऐसा करने के तरीके बताकर उनकी मदद कर सकते हैं, अलग हैं और दूसरे चरण की अपेक्षा पहले और तीसरे चरण में ज़्यादा स्पष्ट हैं (सभी चरणों में सहायता दाता कर्मचारियों को उन तरीकों के बाबत मुस्तैद रहना चाहिए जिनसे सहायता समूहों में तनाव या विभाजन बढ़ रहा हो और इस तरह संघर्ष की आग को बढ़ाने में वो घी का काम कर रहे हों)। लड़ाई के प्रति स्थानीय लोगों के नज़रियों को भी सुनना महत्वपूर्ण है क्योंकि राहतकर्मी युद्ध से अलग होने को समर्थन देने के मौके तलाशते रहते हैं।

शेष अगले अंक में...

एशियाई मानवाधिकार आयोग के कार्यकारी निदेशक द्वारा श्रीलंका के नागरिकों के नाम एक खुला पत्र

श्रीलंका : मैं भी प्रभाकरन की मृत्यु के प्रति खेद व्यक्त करता हूँ।

प्रभाकरन समेत एल.टी.टी.ई. के समस्त नेतृत्व के मारे जाने के बाद देश के अंदर या बाहर रहने वाले सभी श्रीलंकाइयों का मत है कि इनकी मृत्यु, विशेषकर प्रभाकरन की मृत्यु, शोक का विषय नहीं है। मैं इससे असहमत हूँ।

हिंसक आंदोलनकारी समूह और राज्य दोनों ही अतिवाद का नमूना थे यही असली सोच का विषय है। द्वंद्व में भिन्न समूहों के व्यवहार को इस बात से अलग नहीं किया सकता कि श्रीलंका की राजनीतिक और कानूनी व्यवस्था उस सीमा तक विकसित नहीं हो पाई है जो देश के भिन्न समुदायों के बीच के द्वंद्व को सुलझा सके। आधुनिक सभ्यता की परख किसी समाज-विशेष की पारंपरिक संस्कृति से न होकर उसमें चल रही कानूनी और राजनीतिक व्यवस्था से होती है। यदि श्रीलंका की ऐसी स्थिति है जिसमें कोई भी सभ्य राजनीतिक एवं कानूनी व्यवस्था का अभाव है तो राज्य एवं हिंसक आंदोलनकारियों का मूल्यांकन उसी स्थिति के अंदर ही किया जाना चाहिए।

नैतिक और कानूनी जिम्मेदारियाँ

राज्य और हिंसक आंदोलनकारी इस दौरान किए गए बहेशियाना व्यवहार की नैतिक जिम्मेदारी से बच नहीं सकते। चाहे उस राजनीतिक और कानूनी व्यवस्था में जितनी भी खामियाँ रही हों, हर समुदाय को अपने कार्य के लिए नैतिक जवाबदेही लेनी होगी। इसके लिए हर किसी की जवाबदेही बनती है। अज्ञानता के नाम पर युद्ध की स्थिति में किए गए ऐसे व्यवहारों को गैर-कानूनी और अनैतिक न कहने की छूट नहीं दी जा सकती। फिर भी, जिन लोगों ने ऐसे निर्णय लिए हों जो गलत सिद्ध हुए और जिनसे अनेक लोगों की जानें गईं, उनके मनुष्य होने से इन्कार नहीं किया जा सकता। अतः, उनके प्रति संवेदना व्यक्त की जानी चाहिए। प्रभाकरन श्रीलंका नागरिक था और एक मनुष्य था। अतः, ऐसा कहना अनुचित है कि वह हममें से एक नहीं था।

मैं जन्म से सिंहली हूँ और अपनी वयस्क उम्र तक पहुँचते-पहुँचते मैंने समझ लिया था कि इससे मेरा मूल्यांकन प्रभावित नहीं होना चाहिए। जीवन के बाद के समय में मुझे

समस्त महाद्वीपों की अनेकों प्रजातियों एवं राष्ट्रीयताओं के साथ रहने का अवसर मिला। इस बात के बावजूद भी कि भिन्न संस्कृतियाँ एवं समुदाय अपनी भिन्नता के कारण एक-दूसरे को आनंदित एवं समृद्ध करती हैं, किसी भी समय इन लोगों की राष्ट्रीयताओं ने मेरे मूल्यांकन को प्रभावित नहीं किया। यदि ऐसा है तो मैंने खुद से पूछा कि क्यों मेरा मूल्यांकन अपने देश के समुदायों के लिए इस मामले में भिन्न हो।

अंगुलीमाल

श्रीलंका की सशक्त सांस्कृतिक परंपरा बुद्ध धर्म है, उस दृष्टि से अंगुलीमाल की कहानी का दृष्टांत विषय संगत है। अंगुलीमाल एक मेधावी छात्र था जिसके बारे में कुछ ईर्ष्यालु छात्रों ने उनके गुरु के मन में गलत धारणा भर दी थी। परिणामतः गुरु ने उससे दुर्व्यवहार किया। गुरु ने उससे उँगलियों की माला लाने को कहा। उँगली की खोज ने उसे अपने क्षेत्र का सबसे बुरा शिकारी बना दिया क्योंकि उसे उनकी उँगलियाँ लेने के लिए हर किसी का वध करना होता था। जान की परवाह किये बिना बुद्ध ने उसका सामना किया। इस प्रक्रिया में वह उनका शिष्य बन गया और अपनी गलती को महसूस करके उसने अपने जीने का ढंग बदल दिया। इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि अंगुलीमाल का व्यवहार परिस्थितिजन्य था और वह तब भी एक मनुष्य था और उससे उसी तरह का व्यवहार किया जाना था।

ईसाई धर्म में एक कहानी का जिक्र है जिसमें एक अनैतिक महिला पर पत्थर फेंकने का जिक्र है। उस समय ईसा मसीह ने कहा कि पहला पत्थर वह फेंके जो पापी नहीं है।

इसका यह निहितार्थ नहीं है कि एल.टी.टी.ई. द्वारा की गई कानूनी और नैतिक गलतियाँ माफ कर दी जानी चाहिए या भुला दी जानी चाहिए। ऐसे अत्याचार तब तक राष्ट्रीय व्यवहार की उच्च प्राथमिकता रहने चाहिए जब तक कि सब लोग इसके परिणामों को समझ सकें ताकि ऐसे कदम उठाए जा सकें जिनसे उनकी पुनरावृत्ति भविष्य में न हो सके। 1971 और 1986-91 के दौरान जे.बी.पी. के कार्यकर्ताओं के संदर्भ में ऐसी कोई वार्ता नहीं हुई थी और, वास्तव में, ऐसी वार्ताओं के प्रयास जानबूझकर

दबा दिये गए थे। अतः, ऐसे व्यवहार अथवा इससे बुरे व्यवहार की पुनरावृत्ति हुई।

कानूनी और नैतिक मुद्दों से निबटने की सबसे बड़ी समस्या यह है कि कोई भी इन समस्याओं को उसकी पूर्णता में नहीं लेता। राज्य की कानूनी और राजनैतिक जिम्मेदारी के बारे में बातचीत किये बिना हिंसक आंदोलनकारियों के नैतिक और कानूनी मुद्दों को नहीं सुलझाया जा सकता। यदि राज्य अपने व्यवहार की आलोचना करने से बचता है और राजनैतिक एवं कानूनी संस्थाओं के विकास के माध्यम से अपने व्यवहार में परिवर्तन नहीं लाना चाहता तो हिंसक आंदोलनकारियों की आलोचना एक मजाक बनकर रह जाती है। राज्य द्वारा जिम्मेदारी लेने से इंकार करना कुछ लोगों के लाभ के लिए बिगड़ी हुई कानूनी और राजनैतिक व्यवस्था को बरकरार रखने का माध्यम बन जाती है।

सबके शोषण की धमकी

अतः, हिंसक आंदोलनकारियों के युद्ध से अधिक शक्तिशाली राज्य के उभरने की संभावना उत्पन्न होती है और इसे सब लोगों पर लागू करने से इंकार नहीं किया जा सकता। ऐसा ही प्रचार जर्मनी में साम्यवादियों के विरुद्ध किया गया था जिससे विश्व की सबसे बुरी तानाशाही व्यवस्था का जन्म हुआ। इसी तरह पूँजीवादियों के विरुद्ध संघर्ष करते समय ट्रात्स्की के नेतृत्व में वामपंथी दलों द्वारा किये गए आंतरिक विरोध का उपयोग जोसेफ स्तालिन द्वारा तानाशाही व्यवस्था बनाने के लिये किया गया जो हिटलर की व्यवस्था से भी बुरी थी।

प्रभाकारन की मृत्यु के बाद उसके शरीर का प्रदर्शन और प्रसन्नता की अभिव्यक्ति कुछ जनजातियों में प्रचलित सिर का शिकार इस मानसिकता को दर्शाता है जिसमें अपनी वीरगाथा के गान गाने के लिए पकड़े गए दुश्मन के सिर को रखने की व्यवस्था है। जब कानूनी और राजनैतिक संस्थाएं अपेक्षित स्तर तक बने रहने में असफल रहती हैं तो अतीत के व्यवहार जागृत हो उठते हैं। इस तरह के व्यवहार का प्रदर्शन हेना अरेंध के हाल की तानाशाही व्यवस्थाओं में दिखाई देता है। ऐसी सोच का प्रादुर्भाव नज़रबंदी शिविर को जन्म देता है। ऐसा केवल कम विकसित राजनैतिक और कानूनी तौर पर कम विकसित राज्यों में ही नहीं होता वरन् कुछ

परिस्थितियों में ऐसा हास अधिक शक्तिशाली व्यवस्थाओं में भी देखा जा सकता है। श्रीलंका समेत, एशियाई समाजों के प्राचीन व्यवहार का प्रादुर्भाव जाति-विशेष के शोषण के अलिखित कानून से उत्पन्न होता है जिसमें असीमित मात्र में सामूहिक शोषण की व्यवस्था है। इसका दृष्टांत अरविंद अधिगा द्वारा लिखित व्हाइट टाइगर नामक उपन्यास में मिलता है।

हमारे अपने देश में इतना बड़ा हिंसक द्वंद्व खेद का विषय है। विवादों से निबटने के लिए राजनैतिक और कानूनी व्यवस्था में सुधार लाने का प्रयास न करना और भी खेदजनक विषय है। जिस बुरे ढंग से एल.टी.टी.ई. की हार को दर्शाया जा रहा है उससे समाज में जो कुछ भी कानूनी और राजनैतिक व्यवस्था की साख बनी है, उसका भी हास होता है। आने वाले भविष्य में जिस ढंग से विरोध व्यक्त करने वाले श्रमिकों, किसानों व मध्यम वर्ग अथवा उनकी आवाज उठाने वाले प्रचार-माध्यमों से निबटा जाएगा, उसकी सोच से भी डर लगता है।

असफलता का जश्न

यह ऐसी विजय नहीं है जिसका जश्न मनाने की आवश्यकता है, वरन् यह एक भयानक असफलता है जिसके बारे में सोचने की आवश्यकता है। और यदि झूठे जश्न लोगों को बेवकूफ बनाने के लिए मनाये जा रहे हैं तो ये जश्न वास्तव में असफलता के शौर्य की गाथा गाते हैं। अंतिम तथ्य जिस पर मनुष्य निर्भर रह सकता है वह है सामान्य मानवता और जिस अंतिम तथ्य पर नागरिक विश्वास कर सकते हैं वह है नागरिकता। मरने वाले चाहे हिंसक आंदोलनकारी रहे हों अथवा सैनिक, वास्तव में वे मानवता और नागरिकता के बंधन से बँधे हुए थे। उन सबके लिए शोक मनाया जाना चाहिए। यही न्यूनतम व्यवहार है जो कोई भी दर्शा सकता है। मैं प्रभाकारन समेत सबके लिए शोक व्यक्त करता हूँ।

भवदीय,

बैजल फरनेंदो,

कार्यकारी निदेशक,

एशियाई मानवाधिकार आयोग, हांग कांग

isd इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस,

62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067

टेलीफोन 011-26196356, 46025219 टेलीफैक्स 011-26177904, ईमेल : notowar@rediffmail.com

वेबसाइट : isd.net.in

केवल सीमित वितरण के लिए